# जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2534

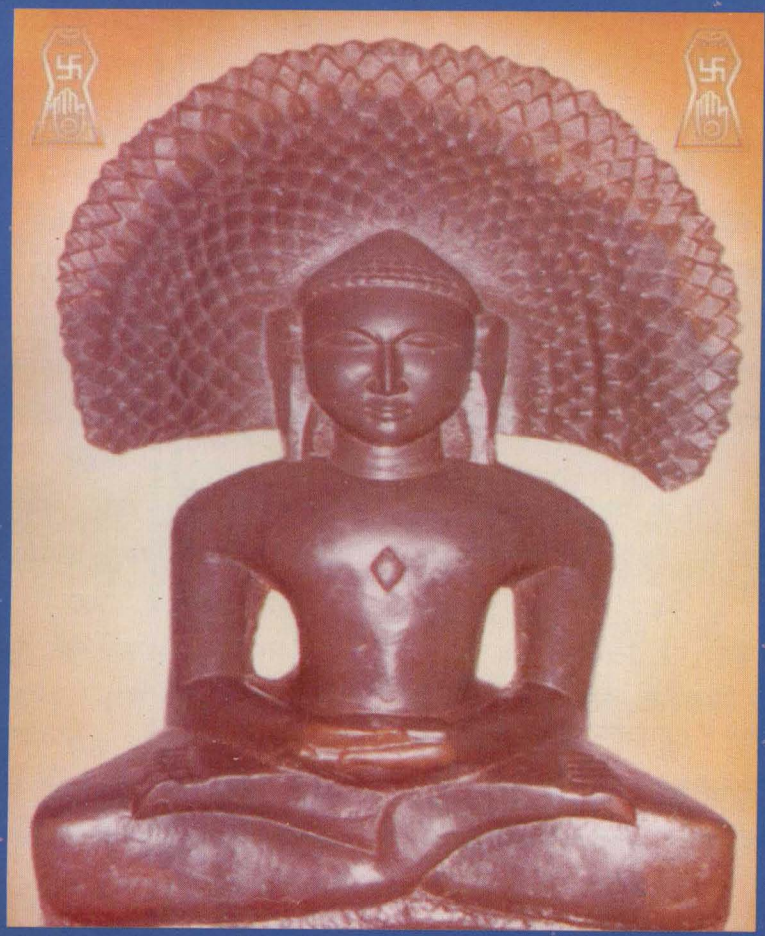

संसार की सबसे विशाल

## सहस्त्रफणी प्राचीन प्रतिमा

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र पटनागंज, रहली, जिला-सागर (म.प्र.)

चैत्र, वि.सं. 2065

अप्रैल, 2008

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य 15/

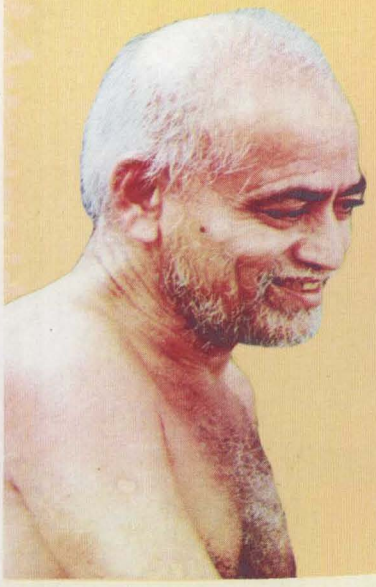

# आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे

91

विजितमना हो फिर हुए, महामना जिनराज।
हिम्मतवाला बन अरे! मतवाला मत आज॥

92

रसना रस की ओर ना, जा जीवन अनमोल।
गुरु-गुण गरिमा गा अरी! इसे न रस से तोल॥

93

चमक दमक की ओर तू, मत जा नयना मान।
दुर्लभ जिनवर रूप का, निशि-दिन करता पान॥

94

पके पत्र फल डाल पर, टिक ना सकते देर।
मुमुक्षु क्यों ना? निकलता, घर से देर सबेर॥

95

नीरस हो पर कटुक ना, उलटी सो बच जाय।
सूखा हो, रूखा नहीं, बिगड़ी सो बन जाय॥

96

छुआछूत की बात क्या? सुनो और तो और।
फरस रूप से शून्य हूँ, देखूँ, दिखूँ विभोर॥

97

दास-दास ही न रहे, सदा-सदा का दास।
कनक, कनकपाषाण हो, ताप मिले प्रभु पास॥

98

आत्म-तोष में जी रहा, जिसके यश का नाप।
शरद जलद की धवलिमा, लज्जित होती आप॥

99

रस से रीता हूँ, रहा, ममता की ना गन्ध।
सौरभ पीता हूँ सदा, समता का मकरन्द॥

100

तव-मम तव-मम कब मिटे, तरतमता का नाश।
अन्धकार गहरा रहा, सूर्योदय ना पास॥

101

बीना बारह क्षेत्र में, नदी बही सुख-चैन।
ग्रीष्मकाल का योग है, मन लगता दिन-रैन॥

102

गगन गन्ध गति गोत्र के, रंग पंचमी संग।
सूर्योदय के उदय से, मम हो प्रभु सम रंग॥

**अंकानां वामतो गतिः अनुसार**
**गगन-0, गंध-2, गति-5, गोत्र-2**

'सूर्योदयशतक' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

अप्रैल 2008 | मासिक | वर्ष 7, | अङ्क 4

# जिनभाषित

**सम्पादक**
**प्रो. रतनचन्द्र जैन**

◆

**कार्यालय**
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

**सहयोगी सम्पादक**
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

**शिरोमणि संरक्षक**
**श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी**
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
**श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर**

◆

**प्रकाशक**
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

**सदस्यता शुल्क**

| | |
|---|---|
| शिरोमणि संरक्षक | 5,00,000 रु. |
| परम संरक्षक | 51,000 रु. |
| संरक्षक | 5,000 रु. |
| आजीवन | 1100 रु. |
| वार्षिक | 150 रु. |
| एक प्रति | 15 रु. |

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

## अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ आचार्य श्री विद्यासागर जी के दोहे — आ.पृ. 2
- ◆ मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ — आ.पृ. 3
- ◆ **सम्पादकीय** : जीवित किसलिए रहना है? — 2
- ◆ **प्रवचन**
  - परोन्मुखता ही परिग्रह है : आचार्य श्री विद्यासागर जी — 4
- ◆ **लेख**
  - वैशाली-जैसी सुनी, जैसी देखी, वैसी : मुनि श्री प्रणम्यसागर जी — 11
  - मारीच से महावीर : डॉ० राजेन्द्रकुमार बंसल — 13
  - मानवजीवन की सफलता : पण्डित होने से : क्षुल्लक श्री शीतलसागर जी — 15
  - अहिंसा और गाँधी : श्री बालगंगाधर जी तिलक — 17
  - जीवन का परामर्शदाता कैसा हो? : डॉ० वीरसागर जैन — 19
  - पारिवारिक एवं प्रोफेशनलक्षेत्र में महिलाओं की भूमिका का समन्वय एवं सन्तुलन : श्रीमती विमला जैन — 21
  - विनाश के कगार पर विरासत : शाहिद हुसैन/अनुवादक : एस०एल० जैन — 23
  - जैनविद्या विश्वकोश : पं० मूलचन्द्र लुहाड़िया — 25
  - जैन त्योहारों के दौरान पशुवध एवं माँस विक्रय पर रोक जायज : सुप्रीम कोर्ट — 30
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 27
- ◆ **कविता**
  - तोते की मानिंद : मनोज जैन 'मधुर' — 20
  - भजन : विनोद कुमार 'नयन' — 29
- ◆ **समाचार** — 31, 32

**लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।**
**'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

# जीवित किसलिए रहना है?

मित्रो! कभी आपने यह सोचा है कि इस दुनिया में जिन्दा रहकर हमें करना क्या है? वैसे हम बहुत से काम करते हैं, इतने कि फुरसत नहीं मिलती है। बेशुमार धन कमाते हैं, आलीशान कोठियाँ बनवाते हैं, बेटे-बेटियों की धूमधाम से शादियाँ करते हैं, इम्तहान पास करके ऊँची नौकरियाँ हासिल करते हैं या चुनाव जीतकर हुकूमत की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, लेकिन ये तो सिर्फ जिन्दा रहने के लिए किये जानेवाले काम हैं या ज्यादा से ज्यादा जिन्दगी से मौत तक के रास्ते को सजा लेने के काम हैं, क्योंकि ये मूल प्रवृत्तियों या वासनाओं से प्रेरित होकर किये जाते हैं और मूलप्रवृत्तियों की प्रेरणा से किये जानेवाले काम जीवित रहने की प्रक्रिया के अङ्ग हैं। इनसे आदमियत में वृद्धि नहीं होती, मनुष्य में गुणात्मक सुधार नहीं होता, इंसान की 'क्वालिटी' इम्प्रूव्ह (improve) नहीं होती, व्यक्तित्व में अलौकिकता नहीं आती। दुनियाँ की कीमती और आकर्षक चीजों को अपने साथ जोड़ लेने से आदमी कीमती और आकर्षक नहीं बनता। स्वर्ण की लंका का अधिपति होने पर भी रावण 'राम' नहीं बन पाया। हलाकू, चंगेजखाँ ईदी अमीन बड़ी-बड़ी सल्तनतों के मालिक होकर भी भेड़िये ही बने रहे। दूध-मलाई खिलाने से किसी भी कुत्ते में आदमियत नहीं आ सकती, न ही विशाल भवन में बाँध देने से गधा घोड़े का रूप धारण कर सकता है। एक नीतिकार ने ठीक ही कहा है-"द्युति सैंहीं न श्वा धृत-कनकमालोऽपि लभते" अर्थात् स्वर्णमाला धारण कर लेने पर भी कुत्ते में सिंह की तेजस्विता नहीं आ सकती। तो हम जितने भी सांसारिक कार्य करते हैं वे सिर्फ जिन्दा रहने के उपाय हैं, क्योंकि उन्हें किये बिना जिन्दा रहना मुश्किल होता है, हमारी मूलप्रवृत्तियाँ या वासनाएँ उन्हें करने के लिए तन-मन में पीड़ा उत्पन्न करती हैं। वे तन-मन की व्याधियों से क्षणिक राहत पाने की औषधियाँ हैं।

सवाल यह है कि इन उपायों के द्वारा जिन्दा रहकर करना क्या है? इसका जवाब एक महत्त्वपूर्ण तथ्य में झाँकने से मिलता है। हम देखते हैं कि दुनियाँ की वस्तुओं का असली रूप मूलतः अप्रकट अवस्था में रहता है, जो बड़ा सुन्दर तथा हृदयाह्लादक होता है। उसे मनुष्य वस्तुओं को तराश-तराश कर, माँज-माँज कर, तपा-तपा कर प्रकट करता है और प्रकट हो जाने पर उस हृदयाह्लादक रूप के कारण उन वस्तुओं से अपनी इन्द्रियों को संतृप्त करता है, अपने शरीर को, अपने घर को, अपने परिवेश को सजाता है। खान से जो स्वर्ण निकलता है वह उसका असली रूप नहीं है। असली रूप उसके भीतर अप्रकट अवस्था में मौजूद रहता है। जब स्वर्णकार अग्नि में तपाकर उसके मल को जला देता है तब स्वर्ण का असली रूप प्रकट होता है, जो इतना देदीप्यमान होता है कि वह आभूषण बनकर मनुष्य के शरीर की शोभा विस्तृत कर देता है। इसी प्रकार हीरे-जबाहरात भी जिस रूप में खान से निकलते हैं वह उनका असली रूप नहीं होता। असली रूप भीतर छिपा होता है। जौहरी खान से निकले हीरों को शाण पर तराश-तराश कर उनके असली रूप को प्रकट करता है, जो प्रकट होकर मनुष्य का बहुमूल्य आभूषण बन जाता है। फूल का मधुर गन्धमय असली रूप भी कली के भीतर बन्द होता है, जो कली के विकसित होने पर प्रकट होता है और नासिका को आप्यायित कर देता है। नवनीत दूध के भीतर प्रच्छन्न अवस्था में ही रहता है और मन्थन के बाद प्रकट होता है। वह इतना मधुर होता है कि उससे जिह्वा, घ्राण, नेत्र तथा स्पर्शन चार इन्द्रियों को एक साथ तृप्ति मिलती है। खेत से चावल अपने असली रूप में कभी प्राप्त नहीं होता। उसका वास्तविक रूप अनेक आवरणों में छिपा होता है। जब उसे मूसल से बार-बार कूटा जाता है, तब कहीं उसका नासिका और नेत्रों को आह्लादित करनेवाला उज्ज्वल, सुगन्धितरूप



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्त होता है। पाषाणों में भी मनमोहक प्रतिमाओं के आकार छिपे रहते हैं, जिन्हें शिल्पी की सिद्धहस्त छैनी कलात्मक तक्षण द्वारा प्रकटकर दर्शकों के लोचनों को मुग्ध कर देती है। विविध वाद्यों में मधुर संगीत और मानवशरीर की गतियों में ललित नर्तन अप्रकट अवस्था में विद्यमान होता है, जिन्हें वादक और नर्तक कुशल अभ्यास से व्यक्त कर मानवहृदय में रस का संचार कर देते हैं।

ठीक इसी प्रकार मनुष्य भी अनादिकाल से जिस रूप में है, वह उसका असली रूप नहीं है। असली रूप उसके भीतर अप्रकट अवस्था में मौजूद है, जो अत्यन्त आनंदमय है। यह आत्मा की अनेक शक्तियों के रूप में अवस्थित है। ये शक्तियाँ अलौकिक और आनंदमय हैं। इनके अभिव्यक्त होने पर व्यक्ति में अलौकिकता आती है और जब ये पूर्णरूप से अभिव्यक्त हो जाती हैं, तब वह पूर्णतः अलौकिक बन जाता है, जिसे परमात्म अवस्था कहते हैं।

इनकी अलौकिकता का लक्षण यह है कि इनके प्रकट होते ही बिना किसी लौकिक वस्तु का आश्रय लिये, मनुष्य की दुःखानुभूति नष्ट हो जाती है और उसे सुख का अनुभव होने लगता है तथा इस प्रक्रिया से एक दिन उसके जन्म-मरण के बन्धन टूट जाते हैं, शरीर से सदा के लिए सम्बन्ध छूट जाता है। फलस्वरूप वह शाश्वतरूप से दुःखमुक्त होकर सुखमय अवस्था में स्थित हो जाता है।

आत्मा की ये अलौकिक शक्तियाँ हैं-सम्यग्दर्शन, सांसारिक सुख में अनासक्ति, दुःख में अनुद्विग्नता, निर्भयता, वीरता, क्षमा, मार्दव, आर्जव, वात्सल्य, मैत्री, कारुण्य, संयम, तप, शुभध्यान आदि।

हमारे दुःख का प्रधान कारण है अनादि अविद्या अर्थात् हमारे साथ अनादिकाल से संयुक्त मिथ्यात्व या अज्ञान। उसके प्रभाव से हमें संसार की वस्तुओं में सुख की भ्रान्ति, शरीर में स्वरूप की भ्रान्ति तथा शरीर से सम्बद्ध पदार्थों में अपनत्व की भ्रान्ति होती है जिसके कारण उनके प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है और हम उनके अभाव में दुःखी होते हैं तथा उन्हें प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के दुःख उठाते हैं। संसार का नियम है कि मनुष्य को सांसारिक वस्तुओं की पूर्णरूप से प्राप्ति कभी नहीं होती और प्राप्त वस्तु स्थायी नहीं रहती। एक न एक वस्तु की कमी सदा बनी रहती है, जिसके कारण मनुष्य सदा एक न एक वस्तु के अभाव का दुःख अनुभव करता रहता है।

सम्यग्दर्शन प्रकट होने पर संसार की वस्तुओं के विषय में उपर्युक्त भ्रान्तियाँ मिट जाती हैं अतएव उनके अभाव में दुःख नहीं होता। दुःख न होने से आत्मा का स्वभावभूत सुख प्रकट होकर अनुभव में आता है। इस प्रकार एकमात्र सम्यग्दर्शनरूप आत्मशक्ति के अभिव्यक्त होने से ही व्यक्तित्व में अदृष्टपूर्व अलौकिकता एवं जीवन में अननुभूतपूर्व आनंद का आविर्भाव हो जाता है। अन्य शक्तियाँ अभिव्यक्त होकर क्रमशः इनका विस्तार करती जाती हैं। कुछ शक्तियाँ तो सम्यग्दर्शन के साथ ही प्रकट हो जाती हैं, अनेक आगे चलकर विशेष साधना द्वारा व्यक्त होती हैं।

आत्मा के इस छिपे हुए असली रूप को प्रकट करना ही जीवन का प्रमुख कार्य है। जीवित रहकर एकमात्र यही कार्य करना जरूरी है। जिन्दा रहने का जो यह एकमात्र उद्देश्य है, उसकी पहचान न होने से हम केवल जिन्दा रहते हैं, जिन्दा रहने का मकसद पूरा नहीं कर पाते।

**रतनचन्द्र जैन**

पाँचों नौबत बाजते, होत छतीसों राग।
सो मन्दिर खाली पड़े, बैठन लागे काग॥
आस-पास जोधा खड़े, सभी बजावैं गाल।
मंझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल॥

**सन्त कबीर**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रवचन

# परोन्मुखता ही परिग्रह है

आचार्य श्री विद्यासागर जी

आज तक जितने लोगों ने अपनी आत्मा को पवित्र एवं पावन बनाया है वे सभी सिद्ध इसी एक महान् अपरिग्रह महाव्रत का आधार लेकर ही बने हैं, उन्होंने मन-वचन-काय से इसकी सेवा की, परिणामस्वरूप उन्हें यह उपलब्धि हुई।

अपरिग्रह महाव्रत, यह शब्द विधेयात्मक नहीं है, निषेधात्मक है। उपलब्धि दो प्रकार की हुआ करती है, प्ररूपणा भी दो प्रकार की हुआ करती है- एक निषेध मुखी और दूसरी विधिमुखी। अपरिग्रह महाव्रत विधिमुखी नहीं है, निषेधमुखी है इससे बहुत ही सुलभता से हम धर्म को जान सकते हैं।

परिग्रह को अधर्म की कोटि में रखा है, अतः अपरिग्रह स्वतः ही धर्म की कोटि में आ जाता है, जो अभी तक अपने को उपलब्ध नहीं हुआ है, उसका दर्शन, उसका परिचय, उसकी अनुभूति, उसकी संवेदना हमें आज तक नहीं हुई उसकी उपलब्धि हमें हुई ही नहीं, क्यों नहीं हुई? इसके लिये आचार्य कहते हैं कि- वह इसलिये उपलब्ध नहीं हुई क्योंकि उसका बाधक तत्त्व विद्यमान है। धर्म व अधर्म एक साथ नहीं रह सकते। अन्धकार व प्रकाश एक साथ नहीं रह सकते, प्रकाश होने पर अन्धकार भागेगा, प्रकाश तिरोहित होगा, अन्धकार होने पर, दोनों एक साथ नहीं रहेंगे। इसी प्रकार परिग्रह महान् बाधक तत्त्व है, अन्य जितने भी बाधक तत्त्व हैं उन सभी तत्त्वों को सही उत्पन्न करनेवाला है। महावीर भगवान् ने इसी को पाँच पापों का मूल सिद्ध किया है। संसार के सारे पाप इसी परिग्रह से उत्पन्न होते हैं।

यह आत्म-तत्त्व स्वतंत्र होते हुये भी यदि जकड़ा हुआ है, बंधा हुआ है तो एकमात्र परिग्रह की डोरी से। परिग्रह की व्युत्पत्ति, परिग्रह शब्द का निर्माण अपने आप में एक चिन्तनीय है। आप लोगों की दृष्टि में अभी तक समझ में आया होगा कि परिग्रह का अर्थ ग्रहण होता है किन्तु ऐसा नहीं, बल्कि आत्मा को जो चारों ओर से पकड़े उसको परिग्रह कहा, आत्मा परिग्रह को पकड़ नहीं सकता किन्तु परिग्रह आत्मा को पकड़ लेता है। वह आत्मा बंध जाता है। उसको आप बाँध नहीं सकते इसी का नाम परिग्रह है। जिस प्रकार तप्त लोहा यदि पानी से भरे पात्र में पटक दिया जाये तो वह चारों ओर से पानी को चूस लेता है। उसी प्रकार आत्मतत्त्व के पास जो कोई भी गुण शक्तियाँ हैं वे सारी की सारी शक्तियाँ समाप्त प्रायः हो जाती हैं, उस परिग्रह के माध्यम से, वह परिग्रह है क्या बला? आचार्यों ने कहा कि- मूर्च्छा ही परिग्रह है। मात्र बाहरी पदार्थों का समूह परिग्रह नहीं है किन्तु उसके प्रति जो 'अटैचमेन्ट' है लगाव है, उसके प्रति जो रागानुभूति है जो उनमें एकत्व की स्थापना करती जा रही है वह ऐसी स्थिति में परिग्रह नाम पा जाती है।

जहाँ पर आप रह रहे हैं, वहीं पर अर्हन्त परमेष्ठी रहेंगे, वहीं पर साधु परमेष्ठी रहेंगे, वहीं पर पुनीत आत्मायें रह रही हैं, किन्तु वह आपके लिये दुःख का स्थान बन जाता है और यही स्थान उन आत्माओं के लिए न सुख का कारण बनता है और न दुःख का, इससे प्रतीत होता है कि वह पदार्थ मात्र उन लोगों के लिये दुःख का कारण नहीं है अपितु उसके प्रति जो मूर्च्छा भाव है वही हम लोगों के लिए परिग्रह है। इस आत्मा का जो अनन्त बल है वह समाप्त हो चुका है। विशालकाय हाथी बंध जाता है, कोई बाँधता है उसे? नहीं, वह खुद बंध जाता है, यह उसकी मूर्च्छा का परिणाम है, उसे कोई बाँध नहीं सकता। इसी प्रकार तीनों लोकों को जानने की शक्ति, अलोक को भी अपने ज्ञान का विषय बनाने की शक्ति इस आत्मा के पास विद्यमान है किन्तु मूर्च्छित है, सुप्त है, वह अव्यक्त है, उसको कोई पकड़ नहीं सकता, किन्तु मूर्च्छा का प्रभाव उस पर पड़ चुका है इसलिये वह शक्ति कुण्ठित है। मूर्च्छा परिग्रह है और यह मूर्च्छा परिग्रह पाँचों पापों का मूलस्रोत है। आप हिंसा से परहेज कर सकते हैं, सत्य को अपना सकते हैं, चोरी नहीं करूँगा। इस प्रकार का दृढ़संकल्प भी ले सकते हैं और लौकिक ब्रह्मचर्य के लिये भी आप स्वीकृति दे सकते हैं, किन्तु एक सूत्र तो आप अपने हाथ में रख ही लेते हैं और वह है... बस महाराज आगे मत बढ़ाइये, यह पूर्ण हो जायेगा तो बिल्कुल ही समाप्त हो जाऊँगा मैं, और परिग्रह को आप विशेष रूप से मजबूती



Jain Education International . For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ सुरक्षित रख सकेंगे और रख रहे हैं।

आज हिंसक का अनादर हो सकता है, झूठ बोलने वाले का हो सकता है और चोर का भी हो सकता है किन्तु परिग्रही का आदर होता है, जितना परिग्रह बढ़ेगा उतना ही वह शिखर पर पहुँच जायेगा, जो कि धर्म के लिये सही नहीं है। धर्म कहता है कि यह हिंसा का समर्थन है, यह चोरी का समर्थन है, यह झूठ का, असत्य का समर्थन है, और कुशील का समर्थन है। आप चाहते हैं धर्म, किन्तु (परिग्रह को) छोड़ना नहीं चाहते इसलिये ऐसा लगता है कि आप धर्म को नहीं चाहते। आपका कहना हो सकता है कि सारे-के सारे निष्परिग्रही हो जायें तो जो निष्परिग्रही हो गये उनको आहारदान कौन देगा? आप शायद इसी चिन्ता में लीन हैं।

अनन्तकालीन खुराक को प्राप्त कर लेगा, तृप्त हो जायेगा, शान्त हो जायेगा वह आत्मा, जो परिग्रह से मुक्त हो जाता है। उस मूर्च्छारूपी अग्नि के माध्यम से आपकी आत्मा तप्त है, तपा हुआ है और उसके (मूर्च्छा के) माध्यम से विश्व में जो कोई भी हेय पदार्थ हैं, वे सबके सब चिपक गये हैं और आत्मा की शक्ति प्रायः समाप्त हो गयी है, हाँ इतना अवश्य है कि बिल्कुल समाप्त नहीं हुई है। आकाश में बादल छाये है, सूर्य की किरणें तो नहीं आई किन्तु ध्यान रहे कि उन बादलों को चीरते हुय प्रकाश तो आ रहा है। उजाला तो आ ही रहा है और दिन उग गया, यह भान सबको हो गया है। इसी प्रकार आत्मा के पास जो मूलतः शक्ति है वह बाहरी पदार्थों के माध्यम से तीन काल में भी लुट नहीं सकती। इस प्रकार के पदार्थों के माध्यम से वह मूर्च्छित तो हो सकती है किन्तु पूर्ण समाप्त नहीं हो सकती, अभी उसकी भाषा रुक जाती है, उसकी काया में स्पन्दन रुक जाता है, सब रुक सकता है किन्तु वह नाड़ी तो धड़कती ही रहती है। इसी प्रकार इस मूर्च्छा का प्रभाव आत्मा पर पड़ तो चुका है और इतना गहरा पड़ चुका है कि वह निश्चेष्ट हो चुका है किन्तु फिर भी उस घट में श्वास विद्यमान है। वह कुछ न कुछ संवेदन कर रहा है। और इसी से यह आशा है कि यह मूर्च्छा अवश्य हट सकती है, इसका इलाज हो सकता है।

बाहर से दिखता है कि आप परिग्रह से नहीं चिपके किन्तु अन्दर से आप कितने चिपके हुए हैं? बचपन की घटना है। मैं एक आम्र वृक्ष के नीचे बैठा था, वृक्ष में आम लगे हुये थे, गुच्छे के गुच्छे, ऊपर की ओर देख, पेड़ बहुत ऊँचा था, बैठे-बैठे इधर-उधर देखा, तीन-चार पत्थर पड़े थे, उनको उठाया और निशाना देखकर मारना प्रारम्भ कर दिया, पत्थर फेंका, वह जाकर आम को लग गया। मैंने सोचा चलो एक आम्र फल नीचे आ ही गया अब तो, किन्तु आम नहीं उसकी एक कोर टूट कर आ गयी। यह आम की ओर से सूचना थी कि मैं इस प्रकार छोड़ने वाला नहीं हूँ, इस प्रकार टूटने वाला नहीं हूँ, मेरे पास बहुत शक्ति है। उसका डण्ठल बहुत पतला है लेकिन उसमें बहुत शक्ति थी। वह इतने पत्थर से गिरने वाला नहीं है। मैंने भी सोचा कि देखूँ तो इसकी शक्ति अधिक है या मेरी, एक पत्थर और मारा तो उसकी एक कोर और आ गई, वह कोर-कोर करके समाप्त हो गया किन्तु फिर भी उसका जो मध्य भाग था वह नहीं छूटा। पर्याप्त था मेरे लिये वह बोध जो उस आम्र की ओर से प्राप्त हुआ बाहरी पदार्थों से आप लोगों की इतनी ही मूर्च्छा हो गयी कि हम खींचना चाहें, हम उसको तोड़ना चाहें तो आप उसे तोड़ने नहीं देंगे और यह कह देंगे कि महाराज! आप भले एक दिन के लिये तोड़ दें पर हम तो वहीं पर जाकर चिपक जायेंगे। यह स्थिति है आप लोगों की। इसलिये यह अन्तिम अपरिग्रह नामक महाव्रत रखा और भगवान् ने उपदेश भी दिया कि संसार का उद्धार हमारे हाथ में नहीं है। जब मैं उस आम्र वृक्ष के नीचे चिन्तन में लीन था, उसी समय थोड़ा सा हवा का झोका आया और एक पका हुआ आम्र चरणों में समर्पित हो गया, उसकी महक, सुगन्धि फैल रही थी, वह पका हुआ था, हरा नहीं था, पीला था, कड़ा नहीं था, मुलायम था, और इससे अनुमान लगाया कि खट्टा भी नहीं होगा, मीठा होगा और चूसने लगा, आनन्द की अनुभूति आ गयी इसमें कोई सन्देह नहीं। थोड़ा-सा हवा का झोंका भी उसके लिये पर्याप्त रहा। दो-तीन-चार महीने से लगा हुआ जो सम्बन्ध था उस सम्बन्ध को छोड़ने के लिये तैयार हो गया। सामनेवाले अन्य आम्र जो पके हुये नहीं दिखते, क्योंकि डण्ठल को छोड़ना नहीं चाहते और इस ओर आना नहीं चाहते, बात तो ठीक है, खींचकर ले भी लिया जाये तो उनमें मिठास तो होगी नहीं, कड़वापन या खट्टापन ही मिलेगा।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका अचार भले ही बना दो, कैरी का झोल भले ही बना दो पर आमरस तो नहीं मिलेगा। आम में दो रस हैं, एक कैरी अवस्था का रस जो लू को निकालने का कारण बन जाता है और दूसरा आम अवस्था का रस जो भूख मिटाने का कारण बनता है, उसका अनुभव-अनुभव ही है।

आप बाजार में ढूंढ़-ढूंढ़ कर आमों को देखते हैं, भैया खट्टा नहीं होना चाहिये, हरा भी नहीं होना चाहिये, मुलायम होना चाहिये, ताजा होना चाहिये। आपने कभी अनुभव किया है कि उस आम ने वृक्ष से सब सम्बन्ध तोड़ दिया, ऊपर से दीखता मात्र है कि सम्बन्ध जुड़ा हुआ था किन्तु वृक्ष से पूर्ण पृथक् हो जाता है उस समय वह नीचे की ओर आ जाता है। एक समय ऐसा भी आता है कि जब हवा न लगे तो भी वह उससे पृथक् हो जाता है जो कि सम्पृक्त था। समय की बड़ी महत्ता है। समय पर बीज पका करता है ठीक है महाराज! आपके उपदेशों की क्या आवश्कता है? हम समय पर अपने आप पकेंगे ही और हो जायेगा काम। यह ठीक है भैया, समय पर काम होगा। आम की मंजरी आती है, उस समय आम लगते हैं पर उस समय पकते नहीं हैं, पकाना चाहें तो भी नहीं पकते, उसके लिये अभी दो माह आवश्यक हैं। दो माह के समय को वह जब तक व्यतीत नहीं करेगा तब तक आम पकेगा नहीं। किन्तु ध्यान रहे, दो माह में वह पक भी जाये यह नियम नहीं है, क्योंकि उसके लिये उष्णता की आवश्यकता है, अनुकूल वातावरण की आवश्यकता है, तब ही वह पक सकता है पर साथ में यह भी ध्यान रहे कि डण्ठल के ऊपर रहेगा तो ही पकेगा। उसकी योग्यता, दो माह तक वह वहाँ रहे तभी अभिव्यक्त हो सकती है, तभी पकने की योग्यता आ सकती है, किन्तु यह बात भी है कि दो माह के भीतर भी पक सकता है, वह कैसे? डेढ़ माह गुजर जाये उसके पश्चात् दस-बीस दिन शेष रहें उस समय उसे हम अपनी तरफ से तोड़कर पका सकते हैं और वह पक भी सकता है, उसमें उसी प्रकार का रस प्रादुर्भाव हो सकता है, यह ध्यान रहे कि वहाँ पर उसकी योग्यता आ चुकी थी, पकाने से पक जाने की, तभी वह पक सका अन्यथा नहीं पक सकता था। मैं कैसे पकाऊँ आप लोगों को? **पाल-विषै माली** कहा तो है पर वह माली इतना होशियार होता है कि एक-दो आम को पहले तोड़कर देख लेता है कि उसमें कुछ हल्की सी रेखायें फूटती सी नजर आ रही हैं कि नहीं। तब माली सोचता है कि- हाँ अब यह पाल में पकाया जा सकता है किन्तु नमूना देखे बिना वह तोड़ता नहीं है यह भी ध्यान रखो मान ले कि उस पेड़ पर बहुत सारे बन्दर बैठे हैं, वह माली उन कच्चे फलों को तोड़कर पकाने की चेष्टा नहीं करेगा, वह बन्दरों को तो भगायेगा किन्तु आमों को (कच्चे होने के कारण) पकायेगा नहीं क्योंकि वे पक नहीं सकते। इसी प्रकार मैं आप लोगों के साथ जबरदस्ती नहीं कर रहा हूँ कि पकड़-पकड़ कर पकाना चाहूँ। आप पकेंगे ही नहीं। जिस आम में हल्की रेखायें नहीं फूटती उसे यदि पकाना चाहें तो वह उस उष्णता के माध्यम से मुलायम तो हो सकता है किन्तु खट्टापन नहीं जायेगा और खट्टापन नहीं जायेगा तो उसमें आनन्द नहीं आयेगा। अभी आपका डण्ठल जोरदार है, मजबूत है, कैसे तोड़ू आम को? महाराज! कुछ ऐसे प्रवचन सुनाओं ताकि पक जायें। कैसे पक जायें भैया? पत्थर के बिना, हवा से हिलने से वह आम गिर गया और इतनी बड़ी सभा में कोई भी पकने को नहीं आया? पकने को आया होता तो हवा (प्रवचन) लगने की कोई आवश्यकता भी नहीं रहती वह अपने आप ही यहाँ पर आ जाता। अर्थापत्ति न्याय से सिद्ध है कि अभी पकने के लिये नहीं आये। हम तोड़ेंगे नहीं भैया! यह कह सकते हैं कि कुछ समय के उपरान्त पक सकते हो। समय तो आयेगा ही, जब आप यहाँ तक आये हैं तो मैं कैसे कहूँ कि आप में पकने की योग्यता नहीं है, पर अभी नहीं है।

**मोह महा मद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि।**

आप लोगों ने निजी सत्ता के महत्त्व को भुला दिया यही गलती हो गयी, फलतः हमारी निधि लुट गयी। आप आनन्द की अनुभूति चाहते हुये भी चाह रहे है कि वह कहीं बाहर से मिल जाये। पर बाहर से कभी आने वाली नहीं है। वह बहार अपने अन्दर है। बसन्त की बहार बाहर नहीं है अन्दर ही है। अन्धा क्या जाने बसन्त की बहार? बसन्त की बहार बाहर चारों ओर है किन्तु अन्धे के लिये नहीं है। इसका अर्थ हुआ कि आँखों वालों के लिये ही बसन्त की बहार है। किन्तु जिसके आँख होकर भी पीड़ा है उसके लिये बसन्त



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बहार नहीं है। यदि पीड़ा भी नहीं है बिल्कुल अच्छी ज्योति है किन्तु फिर भी कुछ लोगों के लिये बसन्त नहीं है। ऐसा क्यों? हम अभी अस्पताल की ओर जा रहे थे, वहीं पर एक बगीचा पड़ता है। जिसको अस्पताल में भरती होना है और जिसका सम्बन्धी वहीं भरती है वह भी उसी बगीचे में से जा रहा है, हम भी उस बगीचे में से जा रहे हैं किन्तु उसके लिए वहाँ बहार नहीं है, उसका उपयोग बहुत दयनीय है, पीड़ित है, दु:खित है। बसन्त की बहार बाहर से नहीं आती अपितु अन्दर से आती है। उस उपयोग में एक प्रकार की जो मूर्च्छा छाई है, वह मूर्च्छा टूट जाये बस वहीं पर बसन्त बहार है।

एक किंवदन्ति है- एक बार भगवान् ने भक्त की भक्ति पर प्रभावित होकर उससे पूछा- तू क्या चाहता है? भक्त ने उत्तर दिया कि मैं और कुछ नहीं चाहता, बस यही चाहता हूँ कि दु:खियों का दु:ख दूर हो जाये। भगवान् ने कहा- तथाऽस्तु! किन्तु यह ध्यान रहे कि जो सबसे अधिक दु:खी है सर्वप्रथम उसको यहाँ लेकर आना होगा। भक्त ने स्वीकार कर लिया, पर यह वरदान तो दीजिये कि मैं जिस किसी दु:खी को लेकर आऊँगा उसको आप सुखी बनायेंगे। भगवान् ने उत्तर दिया अवश्य बनायेंगे, किन्तु सबसे अधिक दु:खी होना चाहिए। वह भक्त बहुत दिन की भक्ति के पश्चात् आज बहुत खुश है कि इतने दिनों की भक्ति उपरान्त यह वरदान मिल गया।

बहुत अच्छा हुआ अब मैं दुनियाँ को सुखी कर दूँगा, सारी दुनियाँ, दु:खी है। पर भगवान् की यह शर्त है कि सबसे अधिक दु:खी को ही पकड़ कर लाना। भक्त दु:खी तलाश करता जाता है। एक-एक व्यक्ति को पूछता जाता है, सब कहते हैं कि- और तो सब कुछ ठीक है, बस एक कमी है, कोई पुत्र की कमी बताता तो कोई धन की, कोई किसी चीज की तो कोई किसी चीज की, पर मुझे पूर्ण कमी है, ऐसा किसी ने नहीं बताया। चलते-चलते उसने देखा कि एक कुत्ता नाली में पड़ा तड़फ रहा है, वह मरणोन्मुख है। वह उससे जाकर पुछता है कि- क्यों क्या हो रहा है? कुत्ता कहता है- मैं बहुत दु:खी हूँ बस भगवान् का भजन करना चाहता हूँ। भक्त ने सोचा- ये दु:खी है, बस अब पकड़ में आ गया, उसने कुत्ते से पूछा- क्यों दु:ख से निवृत्त होना चाहते हो? हाँ होना तो चाहता हूँ। भक्त ने कहा- मुझे भगवान् ने भेजा है, चलो तुम स्वर्ग चलो, वहाँ पर सुख ही सुख है दु:ख है ही नहीं चारों ओर बसन्त की बहार है। कुत्ते ने कहा- बहुत अच्छा। पर यह तो बताओं स्वर्ग है कहाँ पर? भक्त ने उत्तर दिया- बहुत ऊपर सबसे ऊपर। मैं तुम्हे लेने आया हूँ। कुत्ते ने कहा- चलो मुझे स्वर्ग ले चलो।

पर यह बताओं कि वहाँ पर रहने को मकान है कि नहीं, यह वस्तु है कि नहीं, वह वस्तु है कि नहीं? कुत्ता एक-एक वस्तु के बारे में पूछता जा रहा था और वह भक्त उसे आश्वस्त करता जा रहा था। कुत्ते ने आश्वस्त होकर कहा-ठीक है, किन्तु एक बात और पूछनी है कि स्वर्ग में गन्दा नाला है कि नहीं? वह कहता है कि यह गन्दा नाला तो यहाँ की देन है, वहाँ स्वर्ग में नहीं है। कुत्ता बोला-नाला नहीं है तो फिर क्या है? फिर तो मुझे यहीं पर रहने दो, यहाँ पर शांति की ठण्डी-ठण्डी लहरें आ रही हैं।

आप लोगों से भी जयपुर की नाली छूटेगी नहीं इसलिये मैं आप से कह रहा हूँ, कोई जबरदस्ती नहीं कर रहा। सबसे अधिक दु:खी के मुख से भी यही वाणी सुनेंगे कि यहाँ से छुटकारा नहीं चाहेंगे, बल्कि यही माँग करेंगे कि यहाँ से ट्रांसफर न हो, हम यही पर बने रहें। रहस्य समझ में नहीं आ रहा। कैसे कहूँ कि आप सुख चाहते हैं? यह परिग्रह का परिणाम है कि आप उसके माध्यम से जकड़ चुके हैं चारों ओर से जो आत्मा को खींच लेता है उसका नाम परिग्रह है। इसलिये आचार्यों ने, पण्डितों ने विद्वानों ने कहा कि-

**'गृह कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन हैं रखवारे'**

घर तो कारागृह है, वनिता बेड़ी है और जो बन्धुवर हैं वे आप लोगों के गुप्तचर हैं। आप कहीं जायें तो वे पूछते हैं कि कहाँ जा रहे हैं? आप कहें कि- अभी आता हूँ। तो ठीक है, किन्तु पूछेंगे अवश्य, आप छूट नहीं सकते। इस प्रकार का मोहजाल है। वह आपकी आत्मा को अन्दर जकड़ता जा रहा है, अनुबन्ध होता चला जा रहा है और उसी जाल में वह फँस करके समाप्त होता जा रहा है।

मूर्च्छा का उदाहरण रेशम का कीड़ा है, जो अपने मुख से लार उगलता रहता है और उस लार के माध्यम



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से वह अपने आपके शरीर को वेष्टित करता चला जाता है। रेशम के कीड़ों को पालनेवाले जो व्यक्ति हैं, वे उनको, जब वे पूर्णरूप से वेष्टित हो चुकते हैं तब उन्हें उबलते हुए पानी में डाल देते हैं, वह लार रेशम के रूप में परिवर्तित हो जाता है और रेशम के कीड़े को जिन्दगी से हाथ धोना पड़ता है। ध्यान रहे कि रेशम के कीड़ों को पालनेवाले व्यक्ति उसकी लार को मुख में से बहा नहीं सकते, उसको खुराक खिलाते चले जाते हैं, और वह स्वयं लार उगलता चला जाता है। यह उसकी ही गलती है, उसका ही दोष है, अपराध है। उसे कोई बांधने वाला नहीं है। जब तक वह लार नहीं उगलता तब तक कोई उसे उबलते हुए पानी में पटकता भी नहीं है।

आत्मा प्रत्येक समय मोह, राग, द्वेष, मद, मत्सर के माध्यम से अपने आपके परिणामों को विकृत बनाता चला जा रहा है और फलस्वरूप वहाँ पर कर्म-वर्गणायें आकर के चिपकती चली जा रही हैं, यह अनन्तकालीन परम्परा अक्षुण्ण चल रही है। आत्मा को न कोई दूसरा सुखी बना सकता है, न कोई दूसरा इसको दु:खी बना सकता है। यह स्वयं ही सुखी बन सकता है और स्वयं ही दु:खी बन सकता है। यह आत्मा का स्वभाव है पर यह अनन्तकाल से इस जाल में फँसा हुआ है तथापि किसी अन्य सत्ता के माध्यम से पूर्ण समाप्त नहीं हुआ। यह अजर है, अमर है, काल अनन्त है तो आत्मा भी अनन्त है, वह नहीं मिटेगा तो वह भी नहीं मिटेगा। क्या यह संसार भी मिटने वाला नहीं है? नहीं, मिटाना चाहें तो मिट सकता है। राग-द्वेष मोह मिटाये जा सकते हैं किन्तु आत्मा को मिटाने वाला कोई नहीं है। आत्मा मिट नहीं सकती। इससे कुछ बल मिल जाता है कि हाँ कुछ सम्भाव्य है, कुछ गुंजाइश है उन्नति के लिये, किन्तु चाहना बहुत कठिन है। आप प्रत्येक पदार्थ को चाह रहे हैं किन्तु निजी पदार्थ की चाह आज तक उद्भूत नहीं हुई। यह मोह ही ऐसा है, क्या करें महाराज! ध्यान रहे, मोह जड़ है और आप चेतन हैं, यह मोह आपको प्रभावित नहीं करता अपितु आप मोह से प्रभावित होते हैं। तो क्या करें? अतीत में बंधा हुआ जो मोहकर्म है ध्यान रहे कि वह अनन्त नहीं है, अत: उसे नष्ट करने का प्रयास करें।

कितना बल मिल जाता है साहित्य को देखने से, कितनी शक्ति आ जाती है, कितना धैर्य हो जाता है। हम लोगों ने सोचा था कि कर्म तो बहुत दिन के हैं और उनको समाप्त करना बहुत कठिन है, हम तो इनके नौकर रहेंगे, चाकर रहेंगे, ये तो मिटने वाला नहीं है। संसार में सबसे अधिक कमजोर पदार्थ है तो वह 'मोह' है। यह तो आप लोगों की कमजोरी है मन के हारे हार है और मन के जीते जीत। आप डर जाते हैं और वह मोह कुछ संवेदन ही नहीं कर पाता। यदि आप उसे भगाना चाहें तो वह भाग सकता है, आप उसे रोकना चाहें तो वह रुक सकता है, वह अपनी तरफ से कुछ भी तो नहीं करता है।

आपके मकान की दीवार से हवा टकराती हुई जा रही है किन्तु वह क्या वहाँ पर रुक रही है? रुक नहीं सकती, चाहें तो भी रुक नहीं सकती। किन्तु आप वहाँ पर थोड़ी-सी चिकनाहट रख दीजिये, वहाँ पर हवा के माध्यम से धूलि कण उड़कर आयेंगे ओर चिपक जायेंगे। यह चिकनाहट की देन है, धूलि की देन नहीं है। आप नित्य ही राग-द्वेष मोह मत्सर करते चले जा रहे हैं, अपने परिणामों को विकृत बनाते चले जा रहे हैं। इसलिये और नये-नये कर्म आते जा रहे हैं। ध्यान रखिये कि आने की परम्परा टूटी नहीं है इसलिये प्रतीति में आ रहा है कि बहुत दिन की यह धारा टूटेगी नहीं, ऐसा नहीं है। कर्म बहुत सीमित हैं किन्तु आगे का कोई अन्त नहीं है हम यदि इसी प्रकार करते चले जायेंगे तो यह सिलसिला टूटने वाला नहीं है क्योंकि यह एक घुमावदार (सर्किल) रास्ता है। है तो एक ही मील का किन्तु घुमावदार होने के कारण सुबह से लेकर शाम तक चलते चलो तो भी ज्ञान नहीं होता कि कितने चले, कितने नहीं चलें, चला तो एक ही मील है, सफर तो एक मील का तय हुआ सुबह से लेकर शाम तक, यह तेली के बैल की चाल है।

प्राय: तेली के बैल को कोल्हू से बाँध दिया जाता है। आँखे बन्द कर दी जाती है। बैल सोचने लगता है कि सुबह से लेकर शाम तक मेरा सफर तय हो रहा है, शाम को तो कोई अच्छा स्थान मिल ही जायेगा, बहुत चलकर आ रहा हूँ। पर शाम को जब पट्टी हटती है तब ज्ञात होता है कि- मैं तो वहीं पर हूँ जहाँ पर था।

अर्जित कर्म बहुत सीमित हैं और संकल्प अनन्त



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। तेरे-मेरे के संकल्प यदि टूट जायें तो अन्दर जो कर्म हैं वह (बिल्कुल उदासीन हैं वे) उदय में आयें और फल देकर या फल न देकर भी जा सकते हैं।

**तूने किया विगत में कुछ पुण्य पाप,**
**जो आ रहा उदय में स्वयमेव आप।**
**होगा न बंध तबलौं जबलौं न राग,**
**चिन्ता नहीं उदय से, बन वीतराग॥**

(निजानुभव शतक)

बंध व्यवस्था को जानने से यह विदित होता है कि अज्ञानदशा में मोह के वशीभूत होकर जो कर्म किया है, उसका उदय चल रहा है किन्तु उदय अपने लिये बंधनकारक नहीं है अपितु उदय से प्रभावित होना हमारे लिये बंधनकारक है, उस उदय से प्रभावित होना हमारी कमजोरी है, पर यदि इस उदय से हम प्रभावित न हों तो ध्यान रहे कि वह जो उदय में आ रहा है वह जा रहा है। मैं जा रहा हूँ- यह सूचना वह कर्म दे रहा है जो उदय में आ रहा है। वह अब तुम्हारे घर में नहीं रह सकता क्योंकि उसमें जो चिकनाहट थी, जो स्थिति पड़ गई थी वह चिकनाहट समाप्त हो गयी। अब यह धूलि के कण दीवार से खिसक जायेंगे, खिसकने का नाम ही उदय है। उस उदय में यदि आपका होश ठीक है तो ठीक, अन्यथा वह दूसरी संतान पैदा करके चला जायेगा। यह संतान परम्परा भोगभूमि की है। मोह का कार्य भोगभूमि की संतान जैसा है, जब तक मोह सत्ता में है तब तक उसका कोई प्रभाव उपयोग पर नहीं है किन्तु जब उदय में आता है उस समय रागी-द्वेषी संसारी प्राणी उससे प्रभावित हो जाता है, इसलिये वह अपनी संतान छोड़कर चला जाता है।

भोगभूमि काल में पल्योपमों तक जोड़े कामभोग करते रहते हैं, किंतु संतान की प्राप्ति नहीं होगी, अन्त में ये नियमरूप से एक जोड़ा छोड़कर चले जाते हैं। इसी प्रकार आपका अनादिकाल का जो मोह है वह जब उदय में आता है, तब आप रागी-द्वेषी बन जाते हैं इसलिये दूसरी संतान पैदा हो जाती है-

**चिन्ता नहीं उदय से बन वीतराग,**
**होगा न बंध तबलौं जबलौं न राग।**

जिनेन्द्र भगवान् का मुख्य उपदेश है कि राग करनेवाला बंध को प्राप्त करता है, द्वेष करनेवाला बंध को प्राप्त होता है किन्तु वीतरागी को कोई नहीं बाँध सकता, बल्कि बंधे हुये को वह देख सकता है। अतीत में जो कोई भी घटना घटी है उसको वह अपनी आँखों के माध्यम से देख सकता है और वह आनन्द के साथ रहता है। उसे कोई दुःखी नहीं बना सकता। सुख और दुःख मात्र मोहनीय कर्म की परिणति हैं। आत्मा मोह में ही अपने आपको सुखी-दुःखी मान लेता है।

**मैं सुखी दुःखी, मैं रंक राव,**
**मेरे धन गृह गोधन प्रभाव,**
**मेरे सुत तिय मैं सबल दीन,**
**बेरूप सुभग मूरख प्रवीण॥** (छहढाला)

इसमें सन्देह नहीं है कि, यह जीव अपनेरूप को अनेक प्रकार से मानता चला आ रहा है और यह सारा अपना ही अज्ञान है। इस रूप नहीं है फिर भी मानता जा रहा है। आप भले ही ऊपर से कहो कि हम मानते नहीं हैं किन्तु नहीं मानते हुये भी आप माने बिना भी नहीं रहते।

मैं कैसे आपको सुख दूँ? सुख देनेवाला मैं कौन हो सकता हूँ? किन्तु बता सकता हूँ। यदि आप दुःखी हैं तो चलिये मेरे साथ स्वर्ग किन्तु कुत्ता कहता है कि और कुछ नहीं चाहिये वहाँ पर गंदा नाला हो तो बुलायें अन्यथा नहीं। ठीक है, वहाँ पर जब नाला नहीं है तो फिर स्वर्ग ही काहे का? इसी प्रकार आप लोग भी यही कहते हैं कि मुक्ति तो दे दो किन्तु मुक्ति में क्या-क्या है? आप उस कुत्ते के समान यह भी पूछेंगे, आप लोगों को जिसमें रस आ रहा है उसी को तो पूछेंगे। किन्तु वह बाहर का रस, रस नहीं है, वह नीरस है, क्योंकि न तो उसमें संवेदन है, न उसमें ज्ञान है, न उसमें आत्मतत्त्व है, अपितु अचेतन है, मात्र पुद्गल की परिणति है, पर में सुख मानना ही परिग्रह को अपनाना है और स्व में सुख मानना ही परिग्रह को लात मारना है।

अरब देशों में बहुत सम्पदा है। एक बार वहाँ के कुछ श्रीमान् यहाँ भ्रमण हेतु आये। वे यहाँ किसी रेस्ट हाऊस में ठहर गये वहाँ उनका सब प्रकार का प्रबन्ध हो गया। गर्मी का मौसम था अतः एक दिन में तीन बार स्नान की भी व्यवस्था की गयी। अरब देशों में पानी का बहुत अभाव है और यहाँ पर इतना पानी कि एक दिन में तीन बार नहाने की व्यवस्था हो गयी। वहाँ पेट्रोल अधिक मिलता है। इस समय उनके लिये पेट्रोल से भी महत्त्वपूर्ण जल था। एक व्यक्ति ने देखा कि टूंटी को थोड़ा घुमा देने मात्र से खूब तेजी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पानी आ जाता है, उसने सोचा-अरे! यहा तो बहुत अच्छा है, उसने वह लेना चाहा जब रेस्ट हाऊस का नौकर इधर-उधर हुआ, तो उसने वह टूंटी खोलकर अपने बैग में छिपा ली। नौकर आया तो टूँटी नहीं थी, उसे अरब व्यक्ति पर सन्देह हो आया, उससे पूछा कि- बताओ टूँटी कहाँ है? यात्री डर गया, उसने कहा- किसी को बनाना मत जो चाहो सो ले लो। नौकर ने कहा क्या आपको यह टूंटी चाहिये? इस टूंटी की कीमत बीस रुपये है। यात्री ने कहा- तुम मुझ से चालीस रुपये ले लो। नौकर ने सोचा- इस पर कोई सनक सवार हो गई। उसने यात्री से पूछा- क्या और टूंटी चाहिये? हमारे पास और भी हैं, पर अब प्रत्येक टूंटी की कीमत सौ रुपया होगी। यात्री ने कहा- हाँ, हाँ, सौ-सौ रुपया ले लो, पर मुझे एक दर्जन टूंटिया ला दो। वह नौकर भी चमन हो गया, और वह यात्री भी। उसने सब टूंटियाँ बैग में छिपा लीं। रात्रि में जब सब साथी सो गये तो चुपके से एक टूंटी निकाली और उसे घुमाया, यह क्या, उसमें से तो पानी ही नहीं निकला। यह क्या बात हुई? उसने दूसरी टूंटी को परखा तीसरी को, चौथी को, इस प्रकार सब टूंटियों को परखा पर पानी किसी में न आया। ओफ ओहो! मेरा तो सारा पैसा भी खत्म हो गया और यह किसी काम की भी न रही। उसका एक साथी चद्दर ओढ़कर सोने की मुद्रा में पड़ा था और जाग रहा था, वह यह सब देख रहा था उसने पूँछा कि- तुम यह क्या पागलपन कर रहे थे? यात्री बोला- आज मेरे साथ अन्याय हो गया? क्यों क्या बात हो गई? बात यह हुई कि टूंटी में से पानी आता देखकर मैंने सोचा कि हमारे यहाँ पानी की बहुत कमी है, अभाव है, हम सब टूंटियाँ खरीद लें तो वहाँ भी पानी ही पानी हो जायेगा। ओहो! पागल कहीं का। टूंटी में पानी थोड़े ही है, पानी तो टैंक में है और उसी में नल लगा रखा है, मात्र इस व्यवस्था के लिये कि अधिक पानी खर्च न हो। पानी इसमें नहीं है, इसमें से होकर आता है।

सुख इस शरीर में नहीं है, बाहरी सामग्री में नहीं है। आप इस टूंटी वाले आदमी पर तो हँस रहे हैं, पर आप लोगों ने भी तो टूंटियाँ खरीद रखी हैं, इस आशा से कि उनसे सुख प्राप्त होगा? मैं आप लोगों पर हँस रहा हूँ। प्रत्येक व्यक्ति ने कुछ न कुछ खरीद रखा है और उसके माध्यम से सुख चाहता है, शांति चाहता है। मकान एक टूंटी, स्कूटर एक टूंटी, ट्रांजिस्टर एक टूंटी, फ्रिज एक टूंटी। आप लोगों ने टूंटियों में जीवन व्यतीत कर दिया। इसमें से सुख थोड़े ही आने वाला है, यदि आता तो आ जाता आज तक। आप एक ही टूंटी नहीं खरीदना चाहते बल्कि सारी सम्पत्ति लगाकर खरीदते ही चले जाते है, खरीदते चले जा रहे हैं, और भगवान् ऊपर से हँसते चले जा रहे हैं।

आप दूसरों के जीवन की ओर मत देखो! हमारा अपना जीवन कितना अंध-रूढ़ियों के साथ चल रहा है? कुछ हमारा भी विवेक है, कुछ हमारी भी बुद्धि है, हम यह सोचते भी हैं, कि क्या हम जो कर रहे हैं, वह ठीक है? कुछ भी नहीं सोचते। टूंटी के माध्यम से आप कुछ चाहते हैं, यहाँ भी आपने कुछ टूंटियों (टेपरिर्काडर) अपने सामने रखी हैं, ये भी टूंटी हैं क्योंकि इसमें से आप महाराज का प्रवचन फिर सुनेंगे, घर जाकर सुनेंगे। पर ध्यान रखना, सुख इसमें नहीं है, पर पानी के पीछे कोई भी नहीं पड़ा। पानी टूंटियों में नहीं, पानी कुँओं में है उसमें टूंटी मत लगाओ ऐसे ही कूद जाओ तो बहुत आनन्द आयेगा। टूंटी लगाने का अर्थ है कंट्रोल, सीमित करना। अन्दर सरोवर लहरा रहा है उसमें कूद जाओ तो सारा जीवन शान्त हो जाये।

इसलिये मैं आपसे यही कहना चाहूँगा कि यह स्वर्ण अवसर है, मानव को उन्नति की ओर जाने के लिए, इन सब उपकरणों को छोड़कर एक बार मात्र अपनी निज सत्ता का अनुभव करें, उसी में लीन होने का प्रयास करे तो इसी से सुख एवं शांति की उपलब्धि हो सकती है। दुनिया में अन्य कोई भी सुख-शांति देने वाला पदार्थ नहीं है। भगवान् भी हमें सुखी नहीं बना सकेंगे इसलिये सुख-शांति का एकमात्र स्थान आत्मा है अतः सुख चाहो तो उस निजी सत्ता का एक बार अवश्य अवलोकन करो।

**ज्ञान ही दुःख का मूल है, ज्ञान ही भव का कूल।**
**राग सहित प्रतिकूल है, राग रहित अनुकूल॥**
**चुन चुन इनमें उचित को, अनुचित मत चुन भूल।**
**समयसार का सार है, समता बिन सब धूल॥**

महावीर भगवान् की जय।

**'चरण आचरण की ओर' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# वैशाली–जैसी सुनी, जैसी देखी, वैसी

मुनि श्री प्रणम्यसागर जी

भगवान् महावीर की जन्मभूमि वैशाली वासोकुण्ड है यह शास्त्रीय और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य से अनेक मनीषियों से एकमत से मान्य है। वैशाली के ग्राम बौना पोखर, जहाँ उसी पोखर से निकली मूर्ति ही मूलनायक के रूप में विराजमान है। इस पोखर (तालाब) के आस-पास सम्पदा अभी भी बिखरी पड़ी है, ऐसा गाँव के लोग कहते हैं। न केवल जैनमूर्तियाँ अपितु अजैन मूर्तियों की प्राप्ति भी यहाँ खुदाई में होती है। राजा चेटक का यह पहला विशाल गणतन्त्र था जिसमें प्रजातान्त्रिक पद्धति से न्याय व्यवस्था सुचारूरूप से चलती थी। कहते हैं कि, यह राजनैतिक व्यवस्था उस समय इतनी सुदृढ़ थी कि महात्मा बुद्ध ने अपने संघ का विभाजन उन्हीं वैशाली के लिच्छिवियों और वज्जिसंघ के संघटन के आधार पर किया था। इस पोखर और पास में राजा विशाल के गढ़ (किले) के पास से बहुत सी सामग्री प्राप्त हुई है जो राजकीय और केन्द्रीय पुरातात्त्विक संग्रहालय में पहुँचा दी गयी है। सन् १९५२ में बौना पोखर से एक और जैनमूर्ति खुदाई में मिली थी वह भी संग्रहालय में रख दी गयी। १९८२ ई० में राजा के गढ़ से एक प्याला निकला जो बहुत चमकदार था, चीनी मिट्टी का बना जैसा लगता था। वह प्याला वैशाली के म्यूजियम में कुछ दिन रखा रहा। जब एक अमरीकी पर्यटक आया तो उसने उस प्याले की चमक और मिट्टी को देखकर उसे खरीदना चाहा। उसका कहना था कि यह प्याला २५०० वर्ष पुराना है, इसे खरीदने के लिये उसने इसकी कीमत २ लाख रूपये तक लगा दी। म्यूजियम के कर्मचारियों ने कहा कि आप इसके लिये राज्य सरकार से सम्पर्क करो। विहार सरकार ने बातचीत करने के उपरान्त उस प्याले को केन्द्रीय सरकार को सौंप दिया और वह प्याला केन्द्रीय संग्रहालय में पहुँच गया।

इस वैशाली से लगभग ५ कि.मी. की दूरी पर वह स्थान है जो वासोकुण्ड कहलाता है। पहले इसका नाम निवास कुण्ड था बाद में यह वासोकुण्ड के रूप में प्रचलित हो गया। उसी ग्राम में जहाँ भगवान् महावीर स्मारक बना है वह भूमि, पवित्र भूमि है। सदियों से ग्रामवासियों के लिये पीढ़ी दर पीढ़ी यह मान्यता चली आ रही है कि भगवान् महावीर का यह जन्मस्थान है। यह भूमि इतनी पवित्र मानते थे कि उस भूमि पर ग्रामवासी कभी खेती नहीं करते थे, क्योंकि खेती करेंगे तो हल चलाना पड़ेगा जिससे उसकी पवित्रता नष्ट हो जायेगी अतः हल न चलने के कारण वह अहल्य भूमि के नाम से जानी जाने लगी। उसी भूमि के निकट एक पीपल का वृक्ष है। यह वृक्ष भी भूमि की तरह पूजा का स्थान है। भगवान् महावीर के नाम से जुड़ा वह वृक्ष यदि कभी आँधी, तूफान में गिर गया तो ग्रामवासी उसी स्थान पर पुनः वृक्ष लगा देते थे। आज भी यदि ग्राम में कोई विवाह या धार्मिक त्यौहार आता है तो लोग प्रथम उस वृक्ष के निकट अहल्य भूमि को पूजकर अपना आगे का कार्यक्रम करते हैं। अभी भी पुष्प, बताशा आदि चढ़ाकर भगवान् महावीर का नाम लेकर उस स्थान की पूजा ग्रामवासी करते हैं।

जिस भूमि पर भगवान् महावीर स्मारक का शिलान्यास १९५६ ई. में राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद जी और साहू शान्तिप्रसाद जी के द्वारा किया गया है, वहीं निकट में एक मंदिर निर्माण का कार्य चल रहा है। पास में ही एक प्राकृत शोध संस्थान है जो विशालकाय और विपुल पुस्तक संग्रहालय से सहित है। इस समस्त लगभग १७ एकड़ भूमि को नथुनी सिंह और ग्रामवासियों ने उस सयम दान में दिया था। इन्हीं नथुनी सिंह के पुत्र जोगेन्दर सिंह है, जो वर्तमान में जैतपुर में फिजिक्स में ..... हैं। आप सरल स्वभावी और महावीर के वंशज, ज्ञातृवंशी क्षत्रिय हैं। आपने ही मुझे यहाँ की स्मृतियों से परिचय कराया। आज भी इस ग्राम के आस-पास २५ घर हैं जो क्षत्रिय ज्ञातृवंशियों के हैं। परम्परा से चले आ रहे इन घरों में पीढ़ी दर पीढ़ी एक व्यक्ति ऐसा अवश्य होता था जो ब्रह्मचर्य का आजीवन जन्म से पालन करता था। कहते हैं कि ब्रह्मचर्य की प्रेरणा या शिक्षा दिये बिना ही व्यक्ति ब्रह्मचर्य को स्वीकारता था। ऐसा व्यक्ति खेती-बाड़ी से प्रयोजन रखे बिना पूजा-पाठ आदि करते हुए शान्ति से अपना पूरा जीवन गुजार देता था। आज भी तीन घरों में ब्रह्मचारी थे पिता नथुनी सिंह ने विवाह किया उनके दो सन्ताने हुई। दोनों ने ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर लिया। आगे कुल परम्परा की चिन्ता से



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फिर नथुनी सिंह ने दूसरा विवाह किया जिनसे जोगेन्द्र सिंह आदि पुत्र हुए। आपके दो भाई (पहली माँ के) देवी नारायण और दीप नारायण सिंह हैं जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। उनमें से दीप नारायण सिंह का अवसान हो चुका है। देवी नारायण आज भी है। उनकी एक झोपडी अलग है। शान्त स्वभाव से नियमित कार्य करते हुए जीवन यापन कर रहे हैं। इन घरों में आज भी आलू (जमीकन्द) आदि का खान-पान नहीं होता है। ये लोग अभी भी रात्रि भोजन नहीं करते हैं।

वर्तमान में वासोकुण्ड गाँव के उत्तरी और दक्षिणी खण्ड हैं। यह लोग उत्तरीखण्ड वासी हैं जिनका ऊपर परिचय दिया है। इन २५ घरों में आज भी २० घर पूर्णत: शाकाहारी हैं। कलिकाल के प्रभाव से अब संस्कार धीरे-धीरे नष्ट होता जा रहा है। दक्षिणखण्ड में रहनेवाले बहुत से परिवार में माँसाहार भी होने लगा है। ब्रह्मचर्य धारी भी अब मात्र दो व्यक्ति बचे हैं। फिर भी महावीर के प्रति श्रद्धा ग्रामवासियों की बनी हुई है। पूजा पद्धति में पूर्वज लोग क्या पढ़ते थे, गाते थे यह भी सब विलुप्त प्राय: हो गया है।

इस ग्राम के आस-पास भी कुछ ग्राम हैं जो महावीर की ऐतिहासिकता को सूचित करते हैं। वासोकुण्ड से एक किमी. पश्चिम उत्तर में एक गाँव है जो पहले महावीर पुर कहलाता था आज उसे वीरपुर कहते हैं। वासोकुण्ड से ३ किमी. पश्चिम में बनिया गाँव है जो पहले वाणिज्य ग्राम कहा जाता था। शास्त्रों में महावीर से जुड़ी इस गाँव में अनेक घटनाओं का साक्ष्य मिलता है। पास में आनन्दपुर और जैनीनगर के नाम से भी गाँव है।

श्रद्धा की कोई भाषा-परिभाषा नहीं होती है इसी उक्ति को चरितार्थ करते हुए ग्रामवासी कहते हैं कि जब भगवान् महावीर का जन्म हुआ था तो उस समय इन्द्र ने रत्नों की वर्षा की थी वे रत्न आज भी प्राप्त होते हैं। एक सत्य घटना है कि बनियाँ गाँव में एक मजदूर ईंट बना रहा था। उसने ईंटा बनाने के लिए ३-४ फीट मिट्टी खोदी तो एक घड़े में रत्न मिले। दिन में घड़ा मिलते ही उसने उस घड़े को वही पूर दिया। रात्रि में आकर घड़ा निकाल ले गया। उसमें से एक रत्न लेकर कुछ दिनों बाद वह पास के सरैया गाँव में गया जहाँ उस रत्न के उसे चार हजार रूपये मिले। उसके बाद उसने कलकत्ता में दूसरा रत्न बेचा तो उसे ८० हजार रूपये मिले। फिर कुछ दिनों बाद दिल्ली में उसने तीसरा रत्न बेचा जो चार लाख रूपये में बिका। उसे यह घड़ा तीन वर्ष पूर्व (२००५ ई.) में मिला और तीन वर्ष में आज वह बहुत बड़ा आदमी बन गया है। बीच में ग्रामवासियों ने इस आश्चर्य को देखकर उससे जानना चाहा। उसने कुछ लोगों को यह बता भी दिया। कभी कोई थाना प्रभारी उसे पकड़ने आया तो उसने उसे भी वह रत्न देकर अपने को बचा लिया। कुछ ग्रामीण जनों को भी उसने रत्न दिये हैं।

एक ओर जहाँ वैशाली, आम्रपाली के कारण पाटलिपुत्र के राजा अजातशत्रु से कई बार जीती गयी, विध्वंस की गयी और आतंक का केन्द्र बनी रही वहीं दूसरी ओर सिद्धार्थ का यह वासोकुण्ड आतातायियों से सुरक्षित रहा है। यहाँ के ग्रामीण लोग अतिशय मानते हैं कि यहाँ कभी प्राकृतिक प्रकोप भी नहीं हुआ है। सर्वत्र शान्ति और सुखदकारी वातावरण है।

पास में एक क्षत्रिय ग्राम है। दंत कथा है कि राजा सिद्धार्थ का राज्य विस्तार उसी क्षत्रिय गाँव की ओर पूर्वी क्षेत्र में हिमालय की तराई तक था। राजा चेटक उनके साले थे इसलिये यहीं पास में आकर सिद्धार्थ बस गये थे। वैशाली और वासोकुण्ड को विभाजित करनेवाली एक नदी थी जो गण्डक नदी के नाम से जानी जाती है। आज उस नदी की धारा बदल गयी है। वह नदी अभी भी है। लोग कहते हैं कि वह पहले गंगा नदी के नाम से ही जानी जाती थी। भौगोलिक स्थिति को देखते हुए प्रतीत होता है कि वासोकुण्ड एक प्रसिद्ध गढ़ था जिसके चारों ओर से जाने आने का स्थान था। आज भी वासोकुण्ड के चारों ओर सड़क-पथ है।

वासोकुण्ड की इस धरती में अभी भी भगवान् महावीर के पवित्र जीवन की सुबास है। यह सुबास काल के प्रभाव से कहीं विलुप्त न हो जाये इसलिये यह सब उल्लेख है।

इत्यलम्

**प्रस्तुति- ब्र. मनोज जैन**
**आरा-पटना (विहार)**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# मारीच से महावीर

डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल, अमलाई

भारतभूमि मानवता को आलोकित करनेवाली महापुरुषों की जन्मभूमि रही है। इस भूमि पर अनन्त काल-प्रवाह में अनेकों विभूतियाँ उत्पन्न हुई, जिन्होंने त्याग, साधना, संयम एवं समत्व का जीवन जीकर समूची मानवता को सद्राह दिखाई। इन महापुरुषों की गणना धर्मग्रन्थों में कहीं अवतार, कहीं भगवान् और कहीं तीर्थङ्कर के रूप में की गई है। कालान्तर में यही महापुरुष नए धर्म या विचारधारा के प्रवर्तक मान लिए गए।

पुराणों के अनुसार भगवान् विष्णु के २४ अवतार हुए जिनमें मत्स्य, कच्छप, बाराह अवतार पशुजगत् से संबंधित हैं, जबकि भगवान् वृषभदेव, भगवान राम, नारायण कृष्ण एवं म. बुद्ध आदि महापुरुषों ने प्रकृति-पुरुष एवं सुख की अपने समय में नई विचारधाराओं को जन्म दिया और वे इनके प्रतीक के रूप में विविध धर्मों के प्रवर्तक स्वीकार किए गए।

अन्तिम कुलकर नाभिराय के पुत्र वृषभदेव को भगवान् विष्णु का अष्टम् अवतार माना है जो युग-प्रवर्तक के रूप में आदिनाथ के नाम से मान्य किए गए हैं। भगवान् आदिनाथ शिवस्वरूप माने गए हैं। कैलाश-पर्वत उनकी साधना स्थली थी एवं वृषभ उनका प्रतीक था, उन्हें शिव रूप में भी हिन्दू पुराणों में मान्य किया है। यह भी एक पौराणिक तथ्य है कि राजा वृषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र सम्राट भरत के नाम पर इस भूखण्ड का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भगवान् वृषभदेव विष्णु के अवतार के साथ ही जैनधर्म के आद्यप्रवर्तक हैं, जिन्होंने इस बात की प्रसिद्धि की कि स्वावलम्बनरूप आनन्द एवं सुख आत्मा के ही गुण हैं और उन्हें बिना किसी परवस्तु के सहारे अपने ज्ञान स्वभाव में ज़मे रमे रहने से प्राप्त किए जा सकते हैं। स्वावलम्बन की यह स्थिति तभी प्राप्त हो सकती है जब व्यक्ति अणु-अणु की स्वतंत्रता को स्वीकार करे और अपने से भिन्न प्रकृति या परवस्तुओं में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप एवं राग-द्वेष न करे क्योंकि यही दुख का मूल है। मुनि वृषभदेव द्वारा सर्वज्ञता प्राप्त करने पर उनके पुत्र भरत ने उनसे पूछा कि क्या इक्ष्वाकुवंश में आप जैसा अन्य कोई सदस्य तीर्थङ्कर होगा, इसके उत्तर में उन्होंने कहा कि तुम्हारा पुत्र मारीच ही महावीर के नाम से २४वाँ तीर्थङ्कर प्रसिद्ध होगा। भगवान् वृषभदेव की यह भविष्यवाणी सुनकर साधु मारीच अहंकारी हो गया और अपने दादा द्वारा प्रतिपादित जिनमार्ग को छोड़कर एक नए धर्म की स्थापना की। उसने सोचा कि मैं देखता हूँ कि कैसे मैं दादा के मार्ग पर चलकर महावीर बनता हूँ। इस प्रकार मारीच के जीव ने आत्मस्वरूप के प्रतिकूल प्रतिगामी मार्ग अपना लिया।

काल प्रवाह में जीवों के भावों के अनुसार अनन्त परिवर्तन हुए। असंख्य वर्ष तक मारीच के जीव ने नरक, स्वर्ग, पशु, मनुष्यगति में भ्रमण कर अनेक प्रयोग किए किन्तु वह सच्चे आत्मसुख को प्राप्त नहीं कर सका। वृषभदेव का पौत्र एवं सम्राट भरत का पुत्र अनन्त दुःख सहन करता हुआ अन्ततः महावीर बनने के पूर्व दसवें भव में सिंह पर्याय में वनराज बना। वनराज अपने दैनिक चर्या के क्रम में हिरण का मांस भक्षण करना चाहता था। अचानक चारणऋद्धिधारी करुणावंत दो साधु भावमुद्रा में सिंह के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने क्रूर परिणामी सिंह के जीव से आँखें मिलाते हुए उसे अहिंसा एवं करुणा का आत्मोपदेश दिया। आँखों के माध्यम से सिंह की आत्मा में बसे परमात्मा की अनुभूति हुई। उसका अज्ञान और कषाय विभाव गलने लगे। उसके ज्ञान नेत्र खुले और उसने अपने आत्मा के ज्ञायकस्वरूप को अनुभूत किया। इस प्रकार जो आत्मश्रद्धान मारीच के रूप में नर पर्याय में संभव नहीं हो सका वह काललब्धि पाकर सिंह की अवस्था में अनुभूत हुआ और पशुपर्याय से परमात्मा बनने के राह पर चल पड़ा। यह है अशुभ परिणामों से शुभ एवं शुद्ध परिणामों में परिवर्तन का सुफल।

सिंह के जीव ने संकल्पी हिंसा का त्याग कर दिया और आत्मसाधना की ओर चल पड़ा। भवांतर में उसने मुनिव्रत धारण किया, स्वर्ग गया और अन्ततः दसवें भव में महाराज सिद्धार्थ के यहाँ राजपुत्र के रूप में जन्म लिया। राजकुमार महावीर ३० वर्ष तक परिवार में रहे, राजसी वैभव में वे अपने आत्मा के अनुभव द्वारा आत्मसाधना करते रहे। उनका जीवन जल में कमल के समान अलिप्त रहा। ३० वर्ष की उम्र में उन्होंने परमात्मपद प्राप्त करने हेतु दीक्षा ली। वे १२ वर्षों तक आत्मा के ज्ञायकस्वभाव



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के साथ निरन्तर सम्पर्क कर आत्मा में डूबे रहने का अभ्यास करते रहे संस्कारगत विकार उनके उदय में उठते किन्तु महावीर ने उन्हें अपना नहीं माना। वे उनके साक्षी ज्ञाता बने रहे और उन पर से दृष्टि उठाकर आत्मरमण करते रहे। बाहर से लोगों को यही लगता है कि वे दिगम्बर बने कठोर साधना कर रहे हैं किन्तु वास्तव में वे तो आत्मा का साक्षात्कार कर अतीन्द्रिय सुख की अनुभूति कर रहे थे। साधना के काल में एक क्षण ऐसा भी आया जब पूर्वबद्ध कर्मों की जंजीरें टूट गई और वे वीतरागी होकर सर्वज्ञ बन गए। सर्वज्ञ अर्थात् समय और स्थान की सीमाओं से परे अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति आत्म-वैभव की होने रूप सतत् अनुभूति।

सर्वज्ञ बनने के पश्चात् उन्होंने तीस वर्षों तक जगती के जीवों को वीतरागता एवं आत्मसाधना का उपदेश दिया। उन्होंने आत्मस्वरूप के प्रति खोटी मान्यता, अज्ञान एवं असंयम को दुख का मूल बताया। उन्होंने कहा कि आत्म श्रद्धान एवं पर-वस्तुओं से सुख प्राप्त करने की आकांक्षा यह दो प्रवृत्तियाँ ऐसी हैं जिनसे जीवन में विकृति उत्पन्न होती है और दुखों का सूत्रपात होता है। इस कारण व्यक्ति पर-वस्तुओं के प्रति मूर्च्छित होकर बेहोशी में क्रोध, अहंकार कपट एवं लोभ आदि आत्म-विकारों को अपना स्वभाव भाव मानता है। महावीर ने कहा कि इन आत्म-विकारों से छूटने का एकमात्र उपाय आत्मश्रद्धान आत्मज्ञान एवं आत्म निमग्नता है। इसे ही त्रिरत्नरूप मोक्षमार्ग कहा है। इसका निरूपण निश्चय एवं व्यवहार रूप से किया गया है।

मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति में ज्ञान की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। ज्ञान के माध्यम से ही वस्तु स्वरूप की जानकारी एवं आत्मा के गुणों के प्रति अहंभाव उत्पन्न होता है। यही अहंभाव जब स्थापित हो जाता है तब ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव रूप मात्र 'होना' शेष रह जाता है। स्वभाव में होने की स्वीकृति ही धर्म की शुरुआत है और स्वभाव में सतत् प्रवाहरूप से जमे रमे रहना ही धर्म है। सद्श्रद्धान के माध्यम से असद्श्रद्धान एवं असद्आचार का रूपान्तरण सद्श्रद्धान एवं सद्आचार के रूप में होता है। इससे आत्म-विकारों की आसक्ति मंद एवं क्षीण होती है और आत्मलीनता के अंशों में वृद्धि होती है। विभाव से स्वभाव में यह रूपान्तरण ही अन्ततः जीवात्माओं को परमात्मपद तक ले जाता है।

ज्ञान के द्वारा रूपान्तरण की इस अंतःप्रक्रिया में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य इन पाँच व्रतों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इससे आत्मस्वरूप की अनुभूति एवं उसके प्रति रुझान के साथ-साथ पाँचों पापों की आसक्ति क्रमशः घटती जाती है जिससे ज्ञानस्वरूप में रमण हेतु उचित वातावरण निर्मित होता है। ऐसे आत्मसाधक विचारों से अनाग्रही एवं दर्शक होते हैं निश्चय से चारित्र ही धर्म है।

भगवान् महावीर के वीतरागता का उपदेश श्रवण कर जिन गृहस्थ महानुभावों ने उनका अनुसरण/अनुकरण किया श्रावक कहलाये। उन्होंने महावीर का उपदेश श्रवण कर अपनी आत्मा के ज्ञायकस्वभाव का श्रद्धान कर घर में रहकर आत्मस्वभाव के सम्मुख होकर साधना की ओर पंचाणुव्रत धारण किए। जिन भव्य महानुभावों ने उनके उपदेश को सुनकर पंचमहाव्रत एवं वैराग्ययुक्त संयम का मार्ग अपनाया वे श्रमण या साधु कहलाए। श्रमण सभी प्रकार के बाह्य आन्तरिक परिग्रह के त्यागी होते हैं। वीरागता के चरम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु अन्ततः गृहस्थों को भी सर्व परिग्रह त्याग कर संयम मार्ग अपनाना होता है। सर्व देश वीतरागी होने के कारण साधु/मुनि भी पंच-परमेष्ठी में सम्मिलित किए गये हैं और वे पूज्यता को प्राप्त हैं। वीतरागता के अभाव में पूज्यपना नहीं बनता यही जिनाज्ञा है।

जीवन में सत्य की खोज तथा अपने आत्मस्वरूप को प्राप्तकर शाश्वत सुख चाहनेवाले महानुभावों को भगवान् वृषभदेव एवं भगवान् महावीर द्वारा उपदेशित आत्म स्वावलम्बन एवं सत्य के मार्ग पर चलना अपेक्षित है। इसमें सभी जीवों एवं समाज का हित हैं।

आइये, हम अपने आत्मस्वरूप को जाने, पहिचानें और जागरूक होकर आत्मस्वरूप में मरण कर भगवान् महावीर जैसे पशु से परमात्मा या निजात्मा से परमात्मा बनने का प्रयास करें। निजात्मा की प्राप्ति के लिए योनि, पंथ, सम्प्रदाय, काल, धर्म, जाति कोई भी तत्त्व बाधक नहीं है। जो अपने आत्मस्वरूप को पहिचानता है, चाहता है और अपने द्वारा अपने लिए अपने को प्राप्त करने हेतु प्रयासरत है, वहीं जिन अर्थात् जैन है। यही वृषभ महावीर संदेश है।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# मानवजीवन की सफलता : पण्डित होने से

क्षुल्लक श्री शीतलसागर जी

प्राचीन संस्कृति से चला आया 'पण्डित' यह एक बहुत ही सुहावना शब्द है। विरले भाग्यशाली ही इस शब्द से सम्बोधित होते हैं। अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो पण्डित बनने की कोशिश करते हैं, लेकिन बन नहीं पाते। कोई ऐसे भी पण्डित हैं जो इस पद को बुरा मानते हैं। एक बार एक पण्डित जी ने सुनाया था-

**पंडिताई पल्ले पड़ी, पूर्व जन्म को पाप।**
**औरन को उपदेश दे, कोरे रह गये आप॥**

एक जगह आया है- 'पंडा विद्यते यस्य स: पंडित:' अर्थात् जिसके बुद्धि हो वह पण्डित है। परन्तु शास्त्रीय दृष्टि से विचारा जाय तो ऐसा कोई प्राणी है नहीं कि जिसके बुद्धि अर्थात् ज्ञान न हो। सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों में भी महर्षियों ने मति और श्रुत ये दो ज्ञान माने हैं। अत: इस परिभाषा के अनुसार सभी प्राणी पण्डित कहे जायेंगे। इसलिये मात्र ज्ञान होने से कोई पण्डित नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार एक जगह पढ़ने में आया है-

**'पण्डिता: खण्डिता: सर्वे भोजराजे दिवंगते'**

अर्थात्- राजा भोज के दिवंगत (स्वर्गस्थ) हो जाने के बाद कोई पण्डित नहीं रहा।

राजा भोज संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इतना ही नहीं, उसके समय में दीन से दीन व्यक्ति भी संस्कृत भाषा का शुद्ध उच्चारण करता था और उनके स्वर्गस्थ हो जाने के बाद वह स्थिति नहीं रही। अत: संसार में उपरोक्त उक्ति प्रसिद्ध हुई।

परन्तु यहाँ विचारणीय है कि मात्र संस्कृत भाषा का विशेष ज्ञान होने से भी कोई पण्डित नहीं होता। इसी प्रकार प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू, मराठी, कन्नड़, तेलगू, गुजराती आदि एक भाषा का अथवा दो आदि सम्पूर्ण भाषाओं का भी यदि कोई प्रकाण्ड विद्वान् हो, तो भी वह पण्डित नहीं कहला सकता।

विश्व में अच्छे से अच्छे वक्ता-प्रवचनकर्त्ता होते आये हैं और वर्तमान में भी हजारों हैं, परन्तु मात्र घण्टों तक धाराप्रवाह प्रवचन कर देने अथवा वक्तृत्व शैली द्वारा हजारों नर-नारियों को मंत्रमुग्ध कर देने से पण्डित नहीं कहला सकते। हाँ! निम्न लक्षणवाला पण्डित कहला सकता है-

**मातृवत्परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।**
**आत्मवत्सर्वभूतेषु, य: पश्यति स: पण्डित:॥**

अर्थात् जो पराई स्त्रियों को माता के समान, दूसरे के धन को लोष्ठ के समान और प्राणीमात्र को अपने समान समझता है, वह पण्डित है।

प्रश्नोत्तर रत्नमालिका ग्रन्थ में आया है- 'क: पण्डितो? विवेकी' अर्थात् पण्डित कौन है? जो विवेकी- हित और अहित का विचार रखने वाला है वह पण्डित है।

एक बार मूर्ख का लक्षण मालूम करने के लिये राजा भोज ने भरी सभा में पण्डित कालिदास को मूर्ख कहकर बुलाया था कि 'आईये मूर्खराज! आईये मूर्खराज!' इस पर विद्वान् कालिदास ने उत्तर दिया था-

**खादन्न गच्छामि हसन्न जल्पे,**
**गतन्न शोचामि कृतन्तु मन्ये।**
**द्वाभ्यां त्रितयो न भवामि राजन्!**
**किं कारणं भोज! भवामि मूर्ख:॥**

अर्थात् हे राजा भोज! मैं खाते हुये नहीं चलता, हँसते हुये बात नहीं करता, जो हो चुका उसका शोक नहीं करता, उपकारी के उपकार को नहीं भूलता और जहाँ दो व्यक्ति बात करते हों वहाँ नहीं जाता, फिर आपने मुझे मूर्ख कहकर कैसे बुलाया? कालिदास के उक्त कथन से स्पष्ट हो जाता है कि जो चलते हुये नहीं खाता, बात करते समय नहीं हँसता, हो चुका उसका शोक नहीं करता, उपकारी के उपकार को कभी नहीं भूलता और जहाँ दो व्यक्ति बात कर रहे हों वहाँ नहीं जाता, वह पण्डित है।

परमानन्द स्तोत्र में पंडित का बहुत ही सुन्दर लक्षण आया है। उसमें लिखा है-

**सदाऽऽनन्दमयं जीवं, जानाति स: पण्डित:।**
**स सेवते निजाऽऽत्मानं, परमानन्द-कारणम्॥**

अर्थात् पण्डित वह है जो कि जीव को नित्य आनन्दमय जानता है तथा परमानन्द के कारणभूत उस निज आत्मा को ही सेवता-अनुभव करता है।

आगे उसी स्तोत्र के तेईसवें श्लोक में भी पण्डित का लक्षण आया है, जो कि विशेष आदरणीय है। वहाँ



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लिखा है-

**पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।**
**तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः॥**
**काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्तिरूपेण तिष्ठति।**
**अयमात्मा शरीरेषु, जानाति सः पण्डितः॥**

अर्थात् जिस तरह सुवर्णखान के पाषाणों में सवर्ण, दुग्ध में घृत और तिल में तैल विद्यमान है, उसी तरह शरीर में भी शिव अर्थात् शान्तस्वभावी आत्मा विद्यमान है। इसी प्रकार, जैसे काष्ठ में अग्नि शक्तिरूप से विद्यमान है उसी प्रकार शरीरों में भी आत्मा विद्यमान है और ऐसा जाननेवाला ही पण्डित है।

सारांश यह है कि मनुष्य पर्याय को प्राप्त करके, पण्डित वही कहलाने योग्य है, जिसमें उपरोक्त बातें हों।

किसी मुर्दे को ले जाते देखकर पण्डित व्यक्ति यह नहीं मानता है अमुक मर गया है। वह तो सोचता है कि जिस प्रकार वस्त्र फट जाने पर या पुराने हो जाने पर बदल लिये जाते हैं या नये धारण कर लिये जाते हैं, उसी प्रकार इस मुर्दे शरीर के बेकाम हो जाने से, इसमें रहनेवाला शाश्वत् आत्मा जीव भी इसे छोड़कर नये शरीर को धारण करने चला गया है। पण्डित व्यक्ति यह भी दृढ़-निश्चय रखता है कि किसी भी आत्मा को कोई शस्त्र छेद-भेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और हवा उसे सोख या सुखा नहीं सकती। हाँ, उक्त हेतु जो कुछ बिगाड़ करते हैं, वे शरीर का ही करते हैं। आत्मा का तनिक भी नहीं।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः' के अटल सिद्धान्तानुसार जो संसार में जन्म लेता है वह एक दिन प्राप्त हुये शरीर को अवश्य छोड़ता है और संसार में इसी को मरण कहा है। महर्षियों ने इस मरण के अनेक प्रकार बताये हैं, जिनमें तीन मरण ही प्रशंसनीय तथा श्रेष्ठ हैं। सो ही बताया है-

**पंडिद पंडिद मरणं, च पंडिदं बालपंडिदं चैव।**
**एदाणि तिण्णि मरणाणि, जिणा णिच्चं पसंसंति॥**

अर्थात् पण्डितपण्डितमरण, पण्डितमरण और बालपण्डित मरण ये तीन मरण जिनेन्द्रदेव ने सदा प्रशंसनीय कहे हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अन्य जितने भी मरण के भेद हैं उनमें से किसी भी नाम में 'पण्डित' शब्द नहीं आया, जबकि उपरोक्त तीनों मरणों में यह शब्द पाया जाता है। अतः इन तीनों मरणों से अलग मरण करने वाला शास्त्रीय विचारधारा से पण्डित नहीं कहला सकता। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रथम 'पंडितपंडितमरणं' करने वाला महान् पण्डित है जिसे फिर कभी संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। दूसरा 'पंडितमरण' करनेवाला मध्यम श्रेणी का पण्डित है जो कि परमहंस दिगम्बर अवस्था में शान्तिपूर्वक शरीर का त्याग करता है और तीसरा 'बालपंडितमरण' करनेवाला, जघन्य श्रेणी का पण्डित है जो कि गृहस्थावस्था में रहकर व्रती अवस्था में ही शरीर त्यागता है।

उपरोक्त कथन से यह बिलकुल स्पष्ट है कि अन्य गुणों के साथ-साथ अहिंसा आदि व्रतों के नियमपूर्वक पालन करने पर ही पंडित संज्ञा प्रारम्भ होती है।

संसार का प्रत्येक मानव अपने को पण्डित कहलाने की इच्छा रखता है और वास्तव में ऐसी इच्छा रखनी भी चाहिये, क्योंकि पण्डित संज्ञा प्राप्त किये बिना सच्चे सुख की प्राप्ति का लक्ष्य पूरा नहीं हो सकता। पर हम अपने-अपने हृदय पर हाथ रखकर देखें कि पंडित संज्ञा प्राप्त करने के लिये जो बातें बताई हैं, उनमें से स्वयं में कौन-कौन विद्यमान हैं? यदि एक भी नहीं तो उन्हें जीवन में लाने की कोशिश करें। इसी में मानव जीवन की सफलता है।

**'आ० महावीरकीर्ति अभिनंदन ग्रन्थ' से साभार**

**समाचार**

कोटा में जिनधर्म प्रचारक मुनि-भक्त एवं सरल हृदय श्री पं० भगतलाल जी शास्त्री का देहावसान दिनांक २३ फरवारी ०८ को हो गया। वे ९० वर्ष के थे।

पं० जी की शिक्षा इन्दौर एवं वनारस के जैन विद्यापीठ में हुई एवं उसके बाद जैनधर्म के प्रचारक के रूप में अशोकनगर, कोलारस शिवपुरी, गुना के बाद विगत् ५० वर्षों तक कोटा के जैनसमाज की सेवा की। एवं विभिन्न जैनपाठशालाओं में अध्यापन का कार्य किया।

**प्रदीप कुमार जैन, महावीरनगर तृतीय,**
**कोटा ३२४ ००४ (राजस्थान)**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अहिंसा और गाँधी

श्री बालगंगाधर जी तिलक

भगवान् महावीर का अहिंसा का उपदेश सर्वमान्य हो गया है। दया और अहिंसा की स्तुत्य प्रीति ने जैनधर्म को उत्पन्न किया है, स्थिर रखा है। उसी से चिरकाल स्थिर रहेगा। इसी अहिंसा-धर्म की छाप जब ब्राह्मणधर्म पर पड़ी तो हिन्दुओं को अहिंसा पालन करने की आवश्यकता हुई। अहिंसा की दया की विशेष प्रीति से कुछ लोगों के हृदय हिंसा के दुष्कृत्यों से दुखने लगे और उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि जिन ग्रन्थों में हिंसा का विधान हो, वे ग्रन्थ हमसे दूर रखे जाएँ।

जैनियों के उदार सिद्धान्त 'अहिंसा परमो धर्मः' ने ब्राह्मणधर्म पर चिरस्मरणीय छाप छोड़ी है। पूर्व काल में यज्ञ के लिए पशुहिंसा होती थी, इसके प्रमाण मेघूदत काव्य तथा और भी अनेक ग्रन्थों में मिलते हैं। यज्ञादि से पशुवध की घोर हिंसा की ब्राह्मण-धर्म से विदाई ले जाने का श्रेय (पुण्य) जैनियों के हिस्से में है। ब्राह्मण-धर्म और जैनधर्म दोनों के झगड़े की जड़ हिंसा थी, वह अब नहीं रही है और इस रीति से ब्राह्मणधर्म अथवा हिन्दूधर्म को जैनधर्म ने अहिंसा-धर्म बनाया है। यज्ञ-यागादिकों में पशुओं का वध होकर जो यज्ञार्थ पशुहिंसा आजकल नहीं होती है, उसका कारण 'अहिंसा' धर्म का सर्वमान्य हो जाना है। शंकराचार्य ने जो ब्राह्मणधर्म का उपदेश किया है, उसमें धर्म का मुख्य तत्त्व अहिंसा बतलाया है। अहिंसा और मोक्ष का अधिकार दोनों ही धर्मों में एक सरीखा माना गया है। पूर्वकाल में अनेक ब्राह्मण जैनधर्म के धुरन्धर विद्वान् हो गये हैं और विद्या के प्रसङ्ग में दोनों का पहिले से प्रगाढ़ संबंध है।

सम्पूर्ण जैनी भाइयों तथा ब्राह्मणधर्म पालनेवालों को परस्पर एक माँ-बाप के युगल पुत्रों की तरह एक ही पुरुष के दायें-बायें हाथ की तरह अपने को एक समझकर परस्पर हाथ मिलाके अपने 'अहिंसा' धर्म के अभ्युदय के लिए भेदबुद्धि रहित होकर प्रयत्न करना चाहिए। मैं यद्यपि जैन नहीं हूँ परन्तु मैंने जैनधर्म का इतिहास तथा उसके प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन किया है। साथ ही, जैनधर्मी मित्रों के संसर्ग से भी बहुत कुछ परिचय पाया है। इसलिए इन दो आधारों पर जैनधर्म पर कुछ कह पा रहा हूँ। जैनधर्म विशेषकर ब्राह्मणधर्म के साथ अत्यन्त निकट संबंध रखता है। दोनों धर्म प्राचीन और परस्पर सम्बन्ध रखनेवाले हैं। ग्रन्थों तथा सामाजिक व्याख्यानों से जाना जाता है कि जैनधर्म अनादि है, यह विशेष निर्विवाद तथा मतभेद रहित है। जैनधर्म की प्रभावना महावीर स्वामी के समय में हुई थी। उसी समय से जैनधर्म अस्खलित रीति से चल रहा है। चौबीस तीर्थङ्करों में महावीर स्वामी अन्तिम तीर्थङ्कर थे। बौद्धधर्म की स्थापना से पूर्व जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। यह बात विश्वास करने योग्य है। गौतमबुद्ध के इतिहास में बीस वर्ष का अन्तर है। बौद्धधर्म के तत्त्व जैनधर्म के तत्त्वों के अनुकरण हैं। महावीर स्वामी की अहिंसा परमो धर्मः का उपदेश सर्वमान्य हो गया है। ब्राह्मण धर्म में भी अहिंसा मान्य हो गयी।

**महान् देशभक्त का महान् कर्त्तव्य**–यह जानने के लिए किसी विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं है कि महात्मा गाँधी का चरित्र शिक्षाप्रद और अनुकरणीय क्यों है। यों तो महात्मा गांधी में और जितनी बातें हैं, वे प्रायः कुछ-न-कुछ बहुत से पढ़े-लिखे लोगों में पायी जाती हैं, परन्तु वास्तविक सुशील और सच्चरित्र मनुष्य बहुत ही कम देखने में आते हैं। गाँधीजी में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे सुशील और सच्चरित्र हैं। बहुत-सी बातों में लोगों का उनसे मतभेद हो सकता है और बहुत से लोग अधिक विद्वान् भी मिल सकते हैं, पर उनमें जो महत्ता है, उसके कारण वे सब लोगों के आदर्श हो सकते हैं। जिस समय किसी को अपने कर्त्तव्य का ठीक ज्ञान हो जाय, उस समय उसे अपने सब स्वार्थ छोड़कर उस कर्त्तव्य के पालन में लग जाना चाहिए और इस बात की कुछ भी परवाह न करनी चाहिए कि इस कर्त्तव्य-पालन के कारण मुझ पर अथवा मेरे परिवार पर भारी संकट आएँगे। उसे ईश्वर पर भरोसा रखकर, निष्काम बुद्धि से अपने कर्त्तव्य-कर्म के पालन में लग जाना चाहिए। महात्मा गाँधी के चरित्र से जो शिक्षाएँ ग्रहण की जा सकती हैं, उनमें से यह एक मुख्य शिक्षा है।

किसी देश की अवस्था सुधारने के लिए सबसे पहले इस बात की आवश्यकता होती है कि उस देश की सत्ता, उस देश के पूर्ण अधिकार उसी देश के निवासियों के हाथ में हों। बिना सत्ता के ना तो बुद्धिमत्ता ही काम



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आती है और न कर्तृत्व ही। यदि महात्मा गाँधी का भी वही मत न होता, तो वे कभी राजनीतिक आन्दोलन में नहीं पढ़ते। यदि कहीं का शासन अन्यायपूर्ण हो और सुधारने का प्रयत्न करें तो न्याय की दृष्टि से वह राजद्रोह नहीं हो सकता। यदि शासक लोग इसे राजद्रोह कहें, तो उसका अर्थ यही है कि वे न्याय और नीति नहीं चाहते। वे अन्याय का प्रतीकार नहीं चाहते, वे अपनी प्रजा को समानता के अधिकार नहीं देना चाहते। इसलिए प्रत्येक देशभक्त का यह कर्त्तव्य है कि वह प्रजा के दु:खों या उस पर होनेवाले अत्याचारों की स्थिति उस अवस्था तक पहुँचावे, जिसमें अंत में शासकों को सुधार के लिए विवश होना पड़े। गांधीजी ने अपने इस कर्त्तव्य का बहुत अच्छी तरह पालन किया है और इसीलिए वे सब लोगों की स्तुति और आदर के पात्र हुए हैं।

**'प्राकृतिविद्या' से साभार**


## श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर, जयपुर
## प्रवेश सूचना

श्री दिगम्बरजैन श्रमण संस्कृति संस्थान द्वारा संचालित महाकवि आचार्य ज्ञानसागर छात्रावास का बारहवाँ सत्र १ जुलाई २००८ से प्रारम्भ होने जा रहा है। यह छात्रावास आधुनिक सुविधाओं से सम्पन्न व अद्वितीय है। जहाँ छात्रों को आवास, भोजन, पुस्तकें, शिक्षण आदि की समस्त सुविधाएँ नि: शुल्क उपलब्ध हैं।

यहाँ छात्रों को राजस्थान माध्यमिक शिक्षा बोर्ड व राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय के निर्धारित पाठ्यक्रम का अध्ययन नियमित छात्र के रूप में श्री दिगम्बरजैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, सांगानेर, जयपुर में कराया जाता है। कॉलेज के पाठ्यक्रम एवं पठन के अतिरिक्त संस्थान में जैनदर्शन, संस्कृत, अंग्रेजी, ज्योतिष, वास्तु तथा कम्प्यूटर शिक्षा आदि विषयों का अध्ययन, योग्य अध्यापकों द्वारा कराया जाता है।

इस छात्रावास में रहते हुए छात्र शास्त्री (स्नातक) परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जैनदर्शन के योग्य विद्वान् तो हो ही जाते हैं, साथ ही सरकार द्वारा आयोजित I.A.S., R.A.S., M.B.A. एवं M.C.A., जैसी सभी प्रतियोगी परीक्षाओं में सम्मिलित हो सकते हैं तथा अपनी प्रतिभा के अनुरूप विषयों का चयन कर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

प्रवेश के इच्छुक जिन छात्रों ने इस वर्ष दसवीं की परीक्षा अंग्रेजी विषय सहित दी है अथवा उत्तीर्ण की है, वे निम्न स्थानों पर लगने वाले चयन शिविर में निम्न पते पर सम्मिलित होवें, जहाँ परीक्षा एवं साक्षात्कार के आधार पर योग्य छात्र का चयन किया जावेगा।

**शिविर स्थल** –

1. श्री दिगम्बरजैन सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर, जिला-दमोह (म.प्र.)
   छात्रावास फोन नं. 0141-0730552, मो. 9887867822
   दिनांक 19 मई से 24 मई 2008 तक
2. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बरजैन मंदिर, उदासीन आश्रम, अशोक नगर,
   उदयपुर (राज.) मो. 09414870099
   दिनांक 25 मई से 30 मई 2008 तक
3. श्री दिगम्बरजैन अतिशयक्षेत्र कुंभोज बाहुबलि, तालुका-हाथकणंगले
   जिला- कोल्हापुर (महा.) मो. 0941224445
   दिनांक 22 मई से 30 मई 2008 तक




Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जीवन का परामर्शदाता कैसा हो ?

डॉ. वीरसागर जैन

व्यक्तित्व के विकास में मनुष्य की अंतरङ्ग योग्यता, वर्तमान पुरुषार्थ, बाह्य वातावरण आदि अनेक तत्त्वों की महती भूमिका होती है। इन्हीं में से एक अत्यन्त प्रमुख तत्त्व है- उसका परामर्शदाता। जिसका परामर्शदाता जैसा होता है उसके व्यक्तित्व का विकास भी वैसा ही होता है। अथवा यूँ कहिए कि जो मनुष्य जिसे अपना आदर्श परामर्शदाता, सच्चा सलाहकार बनाता है, उसका जीवन उसके अनुसार ही निर्मित होता है।

यूँ तो हमें जीवन में कदम-कदम पर ही अनेकानेक परामर्श देनेवाले मिल जाते हैं। दुनियाँ में बिना माँगे परामर्श देनेवालों की कोई कमी नहीं है, भले ही वह सम्बन्धित विषय से अनभिज्ञ ही हो। किन्तु यह भी कटु सत्य है कि सच्चे परामर्शदाता दुनियाँ में अत्यन्त दुर्लभ हैं। जो व्यक्ति निःस्वार्थ हो, सम्बन्धित विषय का समीचीन ज्ञाता हो, करुणा-सम्पन्न हो, वही सच्चा परामर्शदाता हो सकता है।

इस सम्बन्ध में संस्कृत-वाङ्मय के महत्त्वपूर्ण ग्रंथ 'सम्यक्त्वकौमुदी' में एक बड़ी महत्त्वपूर्ण कथा आती है। एक निर्धन ब्राह्मण था। उसकी पत्नी उसे रोज़ कहती रहती थी कि कहीं से कुछ धन लाओ। एक दिन वह अपनी पत्नी के उलाहनों से तंग होकर जंगल में चला गया। सोचा, इससे तो अच्छा है कि मैं मर ही जाऊँ। जंगल में उसे एक शेर मिल गया, जो उसे मारकर खाने के लिए उस पर झपटने ही वाला था, किन्तु समीप में एक वृक्ष के ऊपर बैठे हुए एक हंस पक्षी ने उससे कहा-"अरे मृगराज! यह तुम क्या कर रहे हो? जानते नहीं हो ये कौन हैं? अरे, ये तो ब्राह्मण देवता हैं। आज तुम्हारे किसी महान् भाग्य का उदय हुआ है जो तुम्हें इनके दर्शन हुए हैं, वरना इनके तो दर्शन ही महादुर्लभ होते हैं। मेरा कहना मानो तो इन्हें मत मारो, पेट भरने के लिए जंगल में जानवरों की कमी नहीं है। इनको मारने से तो तुम्हें ब्रह्महत्या का पाप लगेगा, जिससे तुम सैंकड़ों जन्मों में भी मुक्त नहीं हो पाओगे। अतः यदि अपना भला चाहते हो तो आज अवसर का लाभ उठाओ और इन ब्राह्मण देवता को कुछ अर्घ्यादि चढ़ाकर प्रणाम करो। यदि इनका आशीर्वाद मिला तो तुम इस पशुयोनि से तिर जाओगे।"

सिंह को हंस की सलाह बहुत ही पसन्द आई। उसने ब्राह्मण को मारने का इरादा छोड़ दिया और उसके पास जो गजमोती जमीन में छुपे हुए रखे थे उन्हें अपने पंजे से निकाल ब्राह्मण देवता को अर्घ्यस्वरूप चढ़ा दिया। ब्राह्मण प्रसन्न हो गया और आशीर्वाद देकर अपने घर लौट गया। घर में खुशियाँ छा गई। नये-नये वस्त्राभूषण आ गये और नित्य ही अच्छा-अच्छा भोजन बनने लग गया। लेकिन वह ब्राह्मण निरुद्यमी था, अतः थोड़े दिन बाद पुनः निर्धन हो गया। जो लोग निरुद्यमी होते हैं उनके पास कितनी भी सम्पत्ति हो, एक दिन सब समाप्त हो जाती है। पत्नी के आग्रह से किन्तु लोभवशात् वह ब्राह्मण पुनः थोड़े से गजमोती और लेने जंगल में गया। संयोग से उसे उसी स्थान पर वही सिंह पुनः मिल गया। सिंह ने अपने ब्राह्मण देवता को दूर से ही आते हुए देख लिया अतः खड़े होकर विनयपूर्वक बोला-"आइए, आइए, मेरे ब्राह्मण देवता! पधारिए, आपको मेरा बारम्बार प्रणाम। मैं धन्य हूँ जो आज आपके पुनः दर्शन हुये। पिछली बार जब से आपके दर्शन हुये हैं मैं आपको प्रतिदिन प्रातः प्रातः परोक्ष प्रणाम करता हूँ। और आपके पुनः पुनः दर्शन की प्रतीक्षा करता रहता हूँ। हे मेरे प्रातः स्मरणीय देवता! आज तो मैं आपके पुनः दर्शन पाकर सचमुच ही स्वयं को कृतकृत्य महसूस कर रहा हूँ। आप जरा विराजिए, मैंने इस बार आपके लिए बहुत से गजमोती इकठ्ठे करके रखे हैं। आप स्वीकार कीजिए, और मुझे आशीर्वाद दीजिए ताकि मेरी आत्मा का कल्याण हो।"

किन्तु आज बाहरी स्थिति में थोड़ा अन्तर था। समीप स्थित वृक्ष पर जहाँ पहले हंस बैठा था, आज उसके स्थान पर एक कौआ बैठा था। सिंह जैसे ही ब्राह्मण देवता को अर्घ्यस्वरूप गजमोती चढ़ाकर प्रणाम करने को उद्यत हुआ, ऊपर वृक्ष की शाखा से वह कौआ बोला-"अरे ओ सिंह के बच्चे! ये क्या हो गया है तुझको? ये क्या कर रहा है तू?" सिंह ने हंस से पूर्व में प्राप्त हुई सर्व शिक्षा को उसे बता दिया तो कौआ उसकी हँसी उड़ाते हुए बोला- "अरे, यह सब उसने तुम्हें उलटी पट्टी पढ़ा दी है और तुम भोले हो जो उसकी बातों में आकर उल्लू बन गये हो। अरे, सब आदमी एक



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही जैसे होते हैं, सभी में एक जैसा रक्त, मांस-अस्थि आदि होते हैं, किसी में कोई अन्तर नहीं होता, कोई ब्राह्मण और कोई शूद्र नहीं होता। सब हमारा भ्रम है अथवा मूर्ख लोगों की बनाई हुई अन्ध व्यवस्था है। अत: मेरा कहना मानो और इसका काम तमाम करो। अपना पेट भरो और प्रसन्न रहो। कुछ नहीं रखा इन फालतू की बातों में।''

सिंह के पास स्वविवेक की कमी थी। वह कौएँ की बातों में आ गया। और ब्राह्मण को मारकर खा गया। थोड़ा प्रसाद कौए को भी मिल गया, जैसा कि कौआ पहले ही से चाहता था और इसलिए उसने सिंह को वैसी शिक्षा दी थी।

यह कहानी बहुत ही अर्थगर्भित है। इसे मात्र मनोरंजन हेतु नहीं, अपितु अपने जीवन को सही दिशा देने हेतु गंभीरतापूर्वक समझना चाहिए।

संसार में दो प्रकार के परामर्शदाता पाए जाते हैं। एक हंस जैसे और दूसरे कौए जैसे। हंस जैसे परामर्शदाता सभी का भला करते हैं और कौए जैसे परामर्शदाता सबका बुरा करते हैं। प्राय: देखा जाता है कि कौए जैसे परामर्शदाता तो आज गली-गली में मिल जाते हैं जो लोगों को हिंसा, कलह, असत्य आदि की शिक्षा देते हैं कि गाली का जवाब गोली से दो, ऐसा करो, वैसा करो आदि-आदि, परन्तु हंस जैसे परामर्शदाता अत्यन्त दुर्लभ हैं जो लोगों को सचमुच हितकारी शिक्षा देते हैं। कोरे नाम के 'रायचन्द' या 'रायबहादुर' होना भी अलग बात है, पर सचमुच के रायचन्द या रायबहादुर बनना अत्यन्त दुर्लभ है। हमें विवेक जागृत करके अपने जीवन का सही परामर्शदाता चुनना चाहिए ताकि हमारा जीवन सन्मार्ग पर आगे बढ़े।

**अध्यक्ष जैनदर्शन विभाग**
**श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय**
**संस्कृत विद्यापीठ, (मानित विश्वविद्यालय),**
**नई दिल्ली- 110 016**

# तोते की मानिंद

**मनोज जैन 'मधुर'**

रथ विकास का
जाने कब तक
आने वाला है।
अब भीखू की भूख
प्यास पुनिया की जाएगी।
नहर हमारे गाँव द्वार तक
चल कर आएगी
फिर वादों की
नेता फसल
उगाने वाला है

भाँति भाँति का अभिनय
करता हमें लुभाता है।
अपनी दुखती रग पर आकर
हाथ लगाता है
रिश्ते अभी बनाकर
यहीं भुनाने वाला है

लगें राम सा किंतु चरित
रावण का जीता है।

मृग की छाल ओढ़कर
घर में आया चीता है
मांस नोंचकर अपना
ये ही खाने वाला है।

चलो देखने उग आए हैं
आग बबूलों पर
मेला लगने लगा नदी के
दोनो कूलों पर।
फिर बहेलिया आकर
जाल बिछाने वाला है।

राजपथों से पगडंडी तक
ये जुड़ जाएगा
तोते की मानिंद हाथ से
ये उड़ जाएगा
अपना जनमत इसके
पंख लगाने वाला है।

**सी-एस/१८, इन्दिरा कॉलोनी**
**बाग उमराव दुल्हा, भोपाल**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# पारिवारिक एवं प्रोफेशनल क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका का समन्वयन एवं संतुलन

**श्रीमती विमला जैन, जिला एवं सत्र न्यायाधीश**

1. भारतीय संस्कृति नारी की स्वतंत्रता और अस्मिता को प्राचीन काल से संरक्षित करती रही है। हमारी संस्कृति महिलाओं को पत्नीत्व और मातृत्व के तटबंधों के बीच पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के सम्यक्-निर्वाह का संदेश प्रदान करती है। महिला के विकास का सर्वोच्च शिखर उसका मातृत्व ही है। अतः हम पश्चिम से आए नारी स्वातंत्र्य के अंधानुकरण से बचे और महिला को सशक्त करने और पराधीनता से मुक्त बनाने के लिए विवाह संस्था को पूर्ण सम्मान दें। महिला की स्वतंत्रता देह की मुक्ति और भोग की शक्ति तक ही सीमित नहीं है। महिला की स्वतंत्रता पत्नि और माता के संबंधों से मुक्त होकर देहभोग की उन्मुक्त छूट तक ही सीमित नहीं है। प्रत्येक महिला का कर्त्तव्य है कि वह पत्नीत्व और मातृत्व की भूमिका का निर्वाह कर पारिवारिक एवं सामाजिक विकास में अपना पवित्र एवं रचनात्मक योगदान दे।

2. भारतीय महिलाओं ने अपनी निष्ठा, साहसिक भूमिका और सजगता से पूरे विश्व को प्रभावित किया है। महाभारत ने प्रभावी ढंग से द्रोपदी, सावित्री और शंकुतला के स्वतंत्र व्यक्तित्व, दृढ़ता, तेजस्विता, अप्रतिम साहस एवं स्वाभिमान का वर्णन किया है। आदि कवि बाल्मीकि ने रामायण में सीता की सजगता, मुखरता और उग्रता को उल्लेखित किया है। उन्होंने सीताजी के माध्यम से हर पल अपने पति के साथ रहने के हर महिला के अधिकार को संरक्षित किया है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने अपनी सौम्यता के साथ सरल किन्तु सशक्त उक्तियों के माध्यम से पति संग रहने के सीता के अधिकार को संस्थापित किया है। सीता ने स्वविवेक से अपने पति राम के साथ वन जाने का निर्णय लेकर अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्थापित किया है।

3. भारतीय संस्कृति ने अपनी महिलाओं को स्वविवेक से निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान की है। पारिवारिक, सामाजिक एवं राजनैतिक क्षेत्रों में सक्रिय भूमिका का निर्वाह करने का अवसर प्रदान किया है। मध्यकाल में पद्मावत (मलिक मुहम्मद जायसी) ने पद्मावती को मानवीय सद्गुणों की जननी घोषित करते हुए पुरुष की श्रेष्ठता के दंभ को ध्वस्त किया है। भारतीय नव-जागरण के अग्रदूत राजाराम-मोहनराय ने सती दाह का विरोध किया। आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् 1868 में अपनी पत्रिका कविवचन सुधा में 'नारि नर सम होंहि' की प्रभावी उद्घोषणा की है। महात्मा गाँधी ने मीराबाई के चरित्र से सत्यग्रह करने की प्रेरणा प्राप्त की।

4. स्वर्णिम भारतीय इतिहास की इस पृष्ठभूमि को देखते हुए भी वर्तमान में युवकों और युवतियों के बीच इण्टरनेट पर विवाह और ई-मेल पर मिलन समारोह हो रहे हैं। अलग-अलग नगरों में रहते हुए अपने लेपटॉप कम्प्यूटर के माध्यम से युवकों और युवतियों के बीच प्रेम-संबंध स्थापित हो रहे हैं। प्रोफेशनल युवा पतियों एवं पत्नियों की कार्य संबंधी यात्राएँ बढ़ती जा रही हैं। उनमें से कुछ दम्पत्ति एक दूसरे से यात्रा पर आते जाते समय केवल एयर पोर्ट पर ही मिल पाते। उन्हें एक नगर में एक दूसरे के साथ कुछ समय के लिए भी रहना संभव नहीं हो पा रहा है। प्रोफेशनल और करियर नवयुगल के लिए पारिवारिक समय निरंतर घटता जा रहा है। वैवाहिक संबंधों में पारस्परिक मधुरता कम हो रही है। इन समस्याओं से महानगरों के नवयुगल सर्वाधिक प्रभावित हो रहे हैं। कार्यस्थल से माता-पिता के घर लौटने तक बच्चे सो जाते हैं। ऐसे माता-पिता अपने बच्चों से सप्ताह के अंत में अवकाश के दिन में ही भेंट कर पाते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे अब साप्ताहिक माता-पिता बनते जा रहे हैं।

5. कुछ नवयुगल अपनी व्यस्तताओं के कारण अपने शिशु को जन्म ही नहीं देना चाहते हैं। कुछ नवयुगलों ने शिशु को जन्म ही नहीं देने का निर्णय कर लिया है। वे दोहरी आय किन्तु शिशु नहीं के सिद्धान्त का पालन कर रहे हैं। उन्होंने यह स्वीकार कर लिया है कि शिशु को जन्म देने से उनके पारस्परिक मिलने का समय और भी कम हो जावेगा। वे अपने प्रोफेशन के सर्वोच्च स्तर पर अपनी पारिवारिक व्यस्तता के कारण नहीं पहुँच सकेंगे। दुखद पक्ष यह है कि वे अपनी वर्तमान परिस्थितियों से संतुष्ट प्रतीत होते हैं।

6. भारतीय उद्योग परिसंघ द्वारा महानगरों से कराए



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गए सर्वे में यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ है कि डबल इनकम नो किड्स का फंडा भारत में लोकप्रिय होता जा रहा है। ऐसे नवयुगल बढ़ते जा रहे हैं कि जिनके पास दोहरी आय के साधन तो है, पर कोई संतान नहीं है। वे ऐशो आराम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे नवयुगल, होटल, मनोरंजन, शॉपिंग, फिटनेस सेन्टर और ब्रांडेड कपड़ों पर व्यय कर रहे हैं। विदेशों और देश के पर्यटन स्थलों के भ्रमण पर व्यय कर रहे हैं। अनावश्यक वस्तुओं के क्रय पर व्यय कर रहे हैं किन्तु वे गर्भाधान और शिशु पर व्यय नहीं करना चाहते हैं।

7. प्रत्येक नवयुगल का यह उत्तरदायित्व है कि वह अपने सम्मिलित प्रयास से शिशु को जन्म दे। अपनी कोख से शिशु को जन्म देना प्रत्येक महिला का परम कर्त्तव्य है। अपने शिशु का पालन-पोषण करना प्रत्येक माता का धर्म है। प्रत्येक महिला अपने विवाह के साथ प्राकृतिक रूप से ही भावी मातृत्व के सपनों में खो जाती है। गर्भधारण करते ही अपने ममत्व और वात्सल्य से अपने गर्भस्थ शिशु को अभिसिंचित करती है। शिशु को जन्म देकर अत्यधिक प्रसन्न होती है। यदि नारी स्वयं को किसी भी कारण से ऐसे मातृत्व सुख से वंचित करती है तो यह निश्चित है कि वह अपनी कोख के खालीपन को आमंत्रित करती है। अपने भावी जीवन में अपनी खाली कोख पर वह निश्चित ही आँसू बहाती रहेगी। उसके आंचल का दूध सूख जावेगा। नारी की मातृत्व की संवेदनाएँ समाप्त हो जावेंगी। वह प्राकृतिक जीवन-चक्र को ध्वस्त कर देगी।

8. प्रकृति का सर्वश्रेष्ठ वरदान मातृत्व सुख केवल नारी को ही प्राप्त है। भारतीय संस्कृति नारी को सदैव मातृत्व की गरिमा से अभिमण्डित करती रही है। भारतीय नारी ने असाधारण विपरीत परिस्थितियों में भी मातृत्व के गंभीर उत्तरदायित्व का निर्वहन करते हुए शिशु को संरक्षित और संवर्धित किया है। राम द्वारा परित्यक्त गर्भवती सीता ने भीषण वन में असह्य कष्ट उठाते हुए लव और कुश को जन्म दिया है। पहाड़ की गुफाओं में पड़ी असहाय अंजना ने हनुमान को जन्म दिया है। हमारे देश की जंगल में लकड़ी बीनती हुई आदिवासी महिलायें शिशु को जन्म दे देती हैं और सिर पर लकड़ी और हाथ में शिशु को लेकर अपने घर आ जाती हैं।

9. यह सही है कि वर्तमान समय में उच्च शिक्षित एवं प्रोफेशनल नव-विवाहिताओं और माँ बनने वाली महिलाओं के लिए निजी क्षेत्र में नौकरी करना कठिन होता जा रहा है। अधिकांश कम्पनियाँ नव-विवाहित महिलाओं से उनकी योग्यता एवं कार्य अनुभव के साथ ही उनसे मातृत्व विवरण प्राप्त करती हैं। आवश्यक योग्यता एवं कार्य अनुभव होते हुए भी विवाहित, गर्भवती महिलाओं एवं छोटे शिशुओं की माताओं की तुलना में निजी क्षेत्र की अधिकांश कम्पनियाँ अविवाहित महिलाओं को प्राथमिकता दे रही हैं।

10. यह उपयुक्त प्रतीत होता है कि निजी क्षेत्र की कम्पनियाँ गर्भवती महिलाओं एवं छोटे-छोटे शिशुओं की माताओं को घर बैठे काम दें। पार्ट-टाइम जाब दें। उन्हें सीमित और निश्चित काल के लिए नियुक्त करें। टाइम बाउंड जाब की अपेक्षा उन्हें अपनी सुविधानुसार पूर्व निर्धारित घण्टों के लिए प्रोजेक्ट आधारित कार्य दें। यह भी उपयुक्त प्रतीत होता है कि हमारे उच्च शिक्षित नवयुगल अपने प्रोफेशनल उत्तरदायित्व एवं अपने पारिवारिक/सामाजिक उत्तरदायित्त्वों के बीच आदर्श ढंग से समन्वय एवं संतुलन स्थापित करें। भारतीय संस्कारों का संरक्षण/संबर्द्धन करते हुए सांस्कृतिक विकास में अपना अनुपम योगदान प्रदान करें।

**30, निशात कॉलोनी, भोपाल**

जहाँ तक हो सके हम पर सितम ढाते चले जाओ,
समन्दर में हमें तूफाँ से धबराना नहीं आता।

**सरवत नवाज लखनवी**

किनारों से मुझे अय नाखुदा तुम दूर ही रखना,
वहाँ लेकर चलो, तूफाँ जहाँ से उठनेवाला है।

**नरेशकुमार 'शाद'**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# विनाश के कगार पर विरासत

मूल अँग्रेजी लेखक : शाहिद हुसैन

हिन्दी अनुवादक : एस. एल. जैन

यह आलेख 'दि सण्डे इण्डियन' (वॉल्यूम 2, अंक 13) 31 दिसम्बर 07 से 6 जनवरी, 08, प्रधान सम्पादक : अरिंदम चौधरी, सम्पादक : ए. सन्दीप, कार्यालय : प्लानमेन मीडिया प्रा. लि., डी-103, ओखला इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज-प्रथम, नई दिल्ली-110 020, Website - www. thesundayindian.com, E-mail-editor@thesundayindian.com में शाहिद हुसैन के प्रकाशित लेख 'हेरिटेज अण्डर थ्रेट' का हिन्दी अनुवाद है। ऐसी महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ सामग्री प्रकाशित करने के लिए 'दि सण्डे इण्डियन' जैनसमुदाय के धन्यवाद का पात्र है। लेखक श्री शाहिद हुसैन, 'दि सण्डे इण्डियन' के सम्पादक एवं प्रकाशक के प्रति भी आभार प्रदर्शित करते हुए 'विरासत के संरक्षण किए जाने की पवित्र भावना से' पाठकों के अवलोकनार्थ यह आलेख हिन्दी में प्रस्तुत किया जा रहा है।)

**पाकिस्तान के थार रेगिस्तान में स्थित जैनमंदिर, उपद्रवी तत्त्वों के आक्रमण, चोरी एवं संरक्षण की कमी के शिकार - शाहिद हुसैन द्वारा प्राचीन नगर की यात्रा कर सत्य तथ्य का खुलासा।**

थार रेगिस्तान भारत के सिन्धु नदी के कछार से पूर्व की ओर फैला हुआ है और भारत में राजस्थान प्रदेश का हिस्सा है तो उत्तर में अरबसागर से सतलुज नदी तक फैला हुआ है। इसी क्षेत्र के सुदूर दक्षिणी भाग में स्थित सिन्धु प्रान्त में थारपारकर जिला है।

यह स्थान वर्षाऋतु के पश्चात् जब हरियाली से मनमोहक हो जाता है तब दूषित वातावरण में रहने के लिए बाध्य शहरी परिवार इस सुन्दर प्राकृतिक छटा का आनन्द लेने के लिए भ्रमण करते हैं। विशाल रेत के ढेर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मनोज्ञ देवियों के नृत्यों के आकार जैसे हों। इससे यह भी प्रमाणित होता है कि यह विशाल रेगिस्तान पहले समुद्र का भाग था।

लेकिन शहरी पर्यटकों, जिन्हें अपनी विरासतों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं होती है, के कारण इस थारपारकर में स्थित पुरातत्त्वीय सम्पदाओं को क्षतिग्रस्त करने, बहुमूल्य पुरातत्त्वीय विरासत को चुराने आदि रूप में अत्यन्त खतरा उत्पन्न हो रहा है।

गोरीमन्दिर नगरपारकर शहर, जिला थारपारकर से २८ किलोमीटर पर स्थित है। उस मंदिर के बाहर पाकिस्तान सरकार के आर्कियोलॉजी एवं म्यूजियम विभाग के डायरेक्टर जनरल द्वारा इस प्रकार की सूचना लगाई गई है- 'एण्टिक एक्ट (1976 का VII) की धारा 19 के अन्तर्गत, यदि कोई भी व्यक्ति, जो इस सम्पदा को क्षति पहुँचाएगा, तोड़फोड़ करेगा, परिवर्तन करेगा, आकृतियों को मिटाएगा, कुछ लिखेगा, पत्थरों से खुदाई करेगा अथवा अपना नाम आदि लिखेगा, तो उसे तीन वर्ष के कठोर कारावास या अर्थदण्ड अथवा दोनों ही दण्ड एक साथ दिए जा सकेंगे।'

लेकिन इस प्रकार के प्रावधानों के पालन करवाने के लिए उस मन्दिर में कोई सुरक्षागॉर्ड तैनात नहीं किए गए हैं। पाकिस्तान में स्थित 1376 ईस्वी में निर्मित यह गोरीमन्दिर एक प्राचीनतम जैनमन्दिर है, जिसे गैर जिम्मेदार पर्यटकों द्वारा नुकसान पहुँचाया जा रहा है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। इस मन्दिर को कितनी क्षति पहुँचाई जा चुकी है, यह बात इसी से मालूम पड़ती है कि अब यहाँ चिड़ियों के घोंसले एवं चमगादड़ आदि भरे हुए हैं जबकि पहले यहाँ श्रद्धालुओं का ताँता लगा रहता था।

कासिम-अली-कासिम, पूर्व निदेशक- आर्कियोलॉली एवं म्यूजियम विभाग, दक्षिण संभाग, पाकिस्तान सरकार कहते हैं, कि 'भारत में साठ लाख से अधिक जैन धर्मावलम्बी हैं। हम गोरीमन्दिर को उनके लिए तीर्थस्थान के रूप में विकसित करना चाहते हैं। इसके लिए हमने एक योजना का प्रारूप पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार को भेजा है।' उन्होंने आगे कहा- 'दुर्भाग्यवश पाकिस्तान में मन्दिरों के पुनरुद्धार के लिए कुशल कारीगर नहीं हैं। हम अपने कारीगरों को आवश्यक प्रशिक्षण के लिए भारत भेजना चाहते हैं। अत: हमने 4.2390 करोड़ रुपये का मास्टर प्लान सरकार को स्वीकार करने हेतु प्रस्तुत किया है।'

कासिम के अनुसार सिन्ध प्रान्त में 128 पुरातत्त्वीय महत्त्व के स्थान हैं लेकिन पुरातत्त्व विभाग के पास धन की कमी होने के कारण केवल 50 चौकीदार (गॉर्ड) हैं। इन परिस्थितियों में यदि गोरीमन्दिर या थारपारकर के अन्य पुरातत्त्वीय महत्त्व के स्थानों को क्षति हो रही है तो किसी



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

पारिनगर के मेंगो नामक एक जैनव्यक्ति ने यह गोरी मन्दिर बनवाया था। इस मन्दिर की लम्बाई-चौड़ाई समान नहीं है। इसका बाह्य विस्तार उत्तर से दक्षिण दिशा में 74 फुट लम्बा तथा पूर्व से पश्चिम दिशा में 49 फुट चौड़ा है।

मन्दिर का प्रवेश द्वार उत्तर दिशा में गुम्बज के आकार के पोर्च (ड्योढ़ी/ओसारा) से होकर है। इसमें आठ खम्बे केनोपी (Canopy) सहित हैं। उनमें से कुछ खम्बे सफेद संगमरमर और कुछ चूना पत्थर के हैं, जिन पर चूने द्वारा सफेदी की गई है। हाल में 28 खम्बे हैं। इसके बाद एक और कक्ष है जिसे 'ओरधी मण्डप' (Ordhi mandap) कहा जाता है। मन्दिर के अन्त में एक और कक्ष है जिसे 'विहार' नाम से जाना जाता है। पूरे मन्दिर में जगह-जगह फ्रेस्को पेन्टिंग (Fresco Painting) बनी हुई हैं। मंदिर ऐसी दुर्दशा में है कि मंदिर की पेरापेट वॉल (Parapet wall) का पूर्ण क्षय हो चुका है। इस मन्दिर के संरक्षण और पुनर्निर्माण की शीघ्र आवश्यकता है।

मंदिर को क्षतिग्रस्त करने में धार्मिक विद्वेष भी कारण है। दो ऐसी मूर्तियाँ, जो आलिंगनबद्ध मुद्रा में थीं, उन्हें क्षति पहुँचा दी गई है, ऐसा विदित हुआ है। कासिम के कथनानुसार, 'ऐसा अनुमान है कि यह मन्दिर पारिनगर शहर का हिस्सा था। यदि इस स्थान में भली प्रकार से खुदाई की जाए तो हमें उस नगर के इतिहास से सम्बन्धित पुरातत्त्वीय महत्त्व की अनेक कलात्मक वस्तुओं के मिलने की भी सम्भावना है।'

कासिम के अनुसार कच्छ का रन समुद्र का भाग था और पारिनगर उस समुद्र के तट पर ईसा से 500 वर्ष पूर्व एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह था। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार हेतु यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह था और यहाँ से कच्छ, भुज, पोरबन्दर, माण्डल्या, लंका और सुमात्रा देश से व्यापार होता था।

ऐसा कहा जाता है कि पारिनगर बन्दरगाह भयंकर भूकम्प के कारण नष्ट हो गया था तारिख फरिस्ता के कथनानुसार, अब्ने-बतूता यहाँ होकर गये थे और इसे सन् 1223 में जलालुद्दीन खवारिजा शाह ने नष्ट कर दिया था। पूर्व में यहाँ 6 जैनमन्दिर थे।

सन् 2006 में दो सूचनाएँ आईं थी कि वीरवाह-नगरपारकर सड़क के निर्माण करते समय स्वर्ण आभूषणों से भरा हुआ एक अत्यन्त प्राचीन घड़ा प्राप्त हुआ था और खुदाई करने वाले मजदूर उसे ले गए थे। सड़क निर्माण के समय जनवरी 2006 में स्थानीय निवासियों और रेंजर्स (पैरा मिलिट्री फोर्स) जो पास में स्थित थे, को जैनकाल के 21 स्कल्पचर्स प्राप्त हुए थे। शुरु में रेंजर्स ने म्यूजियम के अधिकारियों को अपने केम्प में आने नहीं दिया था, लेकिन बाद में उच्च अधिकारियों के दबाव में उन्हें जाने की अनुमति प्राप्त हो सकी थी।

कासिम का विश्वास है कि पारिनगर से प्राप्त अवशेष न केवल अनुसन्धान एवं शोध करनेवालों के लिए ही उपयोगी रहेंगे बल्कि इससे इतिहास को गहराई पूर्वक ठीकतरह से समझा जा सकेगा। इससे उस स्थान को धार्मिक पर्यटकों की दृष्टि से भी विकसित किया जा सकेगा। 'यहाँ जो लोहे के टुकड़े प्राप्त हुए हैं वे इस ओर संकेत करते हैं कि प्राचीन पारिनगर में जहाज निर्माण से सम्बन्धित व्यवसाय होता होगा।'

चचा अली नवाज, 82 वर्ष, जो नगरपारकर के रहने वाले हैं कहते हैं कि जैनसमुदाय के व्यक्ति पाकिस्तान बनने से पूर्व नगरपारकर में रहते थे। लेकिन 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान बनने पर वे भारत चले गए और अपने साथ बहुत सारी मूर्तियाँ भी ले गए।

थारपारकर में 40 प्रतिशत से अधिक हिन्दू रहते हैं जिनमें अधिकांश अनुसूचित जाति के भील और कोली हैं, परन्तु वहाँ कभी साम्प्रदायिक हिंसा नहीं हुई। वहाँ के हिन्दू युवक मोहर्रम के पवित्र अवसर पर मुसलमानों के जुलूस में भी सम्मिलित होते हुए देखे जाते हैं।

सन् 1960 के पूर्व थारपारकर की अर्थ-व्यवस्था स्वाश्रित थी और आपस में एक दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध एवं व्यापार वस्तुओं के विनिमय (Barter) पर आधारित थे। लेकिन सन् 1970 के दशक में मुद्रा पर आधारित अर्थ-व्यवस्था एवं सन् 1990 के दशक में सड़कों के जालों के निर्माण के पश्चात् बहुत बदलाव आ गया है।

सड़के बनने से पूर्व थारपारकर के निवासी बिचौलियों पर पूर्णतः निर्भर रहते थे, जो उनके पशुधन (थारपारकर में पशु-धन और व्यक्तियों का अनुपात 5:1 है), कम्बल तथा गलीचे आदि बहुत सस्ते मूल्य में खरीद कर कराँची के बाजार में बहुत ऊँची कीमत में बेच देते थे। अब थारपारकर के निवासी इस स्थिति में है कि अपने उत्पादन के लिए वे उचित मूल्य प्राप्त करने हेतु सौदेबाजी कर उचित मूल्य प्राप्त कर सकते हैं। उनमें से कुछ लोग तो कराँची जाकर भी अपने माल को उचित मूल्य में बेचते हैं। ऐसा अक्सर ईद-उल-अजा, जब मुसलमान पशुओं की बलि देते हैं, का समय होता है।

7/3, नूपुर कुँज, ई-3, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल (म.प्र.)



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जैनविद्या विश्वकोश

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया

लम्बे समय से जैनविद्या के दर्शन, इतिहास, आचार, साहित्य, कला, पुरातत्त्व आदि का प्रामाणिक परिचय विश्व के चिंतकों/जिज्ञासुओं को प्रदान करनेवाली ठोस सामग्री का अभाव अनुभव किया जा रहा था। उसके अभाव के कारण देश-विदेश के बुद्धिजीवियों की धारणा में जैनविद्या के धर्म, दर्शन एवं इतिहास के सम्बन्ध में अनेक भ्रमपूर्ण चित्र अंकित हो रहे थे और उसके परिणामस्वरूप समय-समय पर पुस्तकों/लेखों के माध्यम से भ्रमपूर्ण धारणाएँ जन-साधारण में प्रचारित होती रही हैं।

अत: सर्वोदय जैनविद्यापीठ ने जैनसाहित्य के मूल प्रामाणिक ग्रन्थों में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दों के उन्हीं ग्रन्थों में उपलब्ध उनके भेद-प्रभेद सहित अर्थ को दिग्दर्शित करनेवाले एक जैनविद्या विश्वकोश की रचना की योजना जैनविद्या के प्रभावक आचार्य परम पूज्य विद्यासागर महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से प्रारम्भ की। इस योजना को मूर्त्तरूप देकर इसका शुभारम्भ करनेवाले जैनविद्या के यशस्वी विद्वान् डॉ० वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ हैं। पश्चात् जैनविद्या के अध्येता विद्वान् डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर' नागपुर के मार्गदर्शन में एवं डी. राकेश जैन के सहयोग से शब्दकोश का कार्यालय सागर में आरम्भ किया गया।

सर्वोदय जैनविद्यापीठ की महत्त्वाकांक्षी योजना जैनविद्या विश्वकोश परियोजना के कार्य को सुव्यवस्थित गति देने के लिए जनवरी २००२ में सागर कार्यालय का शुभारम्भ किया गया। जिसमें इस परियोजना के साथ अन्य कार्य भी समानान्तर रूप से संचालित हो रहे हैं। विगत् वर्षों से जैनविद्या विश्वकोश का कार्य प्रगति पर है। इसके समय, श्रम एवं व्ययसाध्य होने के कारण शीघ्र ही निष्पन्नता दिखाई नहीं देती। फिर भी इसके निम्न विवरण दृष्टव्य हैं-

१. संचालक मण्डल के निर्णयानुसार परियोजना में जैनविद्या की सभी विधाओं के मूलभूत ग्रन्थों (यदि आचार्य भगवन्त प्रणीत हैं तो वे, अन्यथा उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री से) के द्वारा संज्ञाओं (पारिभाषिक शब्द, शब्दों की विशेषताएँ, स्थान एवं व्यक्तिवाचक शब्द आदि विविध सन्दर्भों) के संग्रह का कार्य निरन्तर १० प्रशिक्षुओं द्वारा सम्पन्न कराया गया। इनके द्वारा अब तक लगभग २५० से अधिक ग्रन्थों (जिनकी सूची संलग्न है) का पारायण किया गया तथा उनमें से संज्ञाओं को, उनके भेद-प्रभेदों, सन्दर्भों व विवरणसहित संकलित किया गया। जिसमें लगभग ४०-५० हजार शब्दों का ससन्दर्भ संकलन सम्पन्न हो चुका है।

सन्दर्भग्रन्थों में जैनविद्या के लगभग सभी विषय के ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। इसमें जैनधर्म के सभी सम्प्रदायों के मूलग्रन्थों के आधार से सामग्री संकलित की गई है। इसके अनन्तर ये सन्दर्भ वर्गीकृत होकर प्रविष्ट लेखन के कार्य में सीधे प्रयोग किये जा सकेंगे।

२. संकलन के साथ संग्रहीत सन्दर्भों के परीक्षण/पुनरावलोकन का कार्य भी समानान्तर रूप से दो अध्येताओं द्वारा सम्पन्न हो रहा है। इसमें प्रथम कार्य सन्दर्भ के संकलन के समय लिये गये संकेतों के निरीक्षण का होता है। अनन्तर उनके सन्दर्भों का पुनरीक्षण एवं संभावित स्खलन का संशोधन / परिवर्धन आदि किया जाता है। इसमें अभी तक २०० ग्रन्थों (सूची में तारांकित ग्रन्थविशेष) के संशोधन का कार्य सम्पन्न हो चुका है।

**सर्वोदय जैनविद्यापीठ ग्रन्थालय**

३. इस कार्यालय द्वारा जैनविद्या विश्वकोश परियोजना के लिए आवश्यक पुस्तक संग्रह का कार्य भी समानान्तर रूप से किया जा रहा है। अभी तक इसके अपने पुस्तकालय में ९ हजार पुस्तकों का संग्रह पूर्ण हो चुका है। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय पुस्तक विभाजन के मानकों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। जिसके कुल ५८ विभाग हैं। यदि अन्यत्र भी इस पद्धति का उपयोग किया जाये तो पाठकों/उपयोगकर्त्ताओं को पुस्तकीय सूचनाओं से लाभान्वित होने में अत्यधिक सुविधा प्राप्त होती है। पुस्तकों की उपलब्धता प्रदर्शित करने के लिए पुस्तक शीर्षकाधारित एवं लेखकाधारित सूचनापत्रों (कार्डस्) का निर्माण कर सुसज्जित किया गया है। पुस्तकों के अतिरिक्त जैनसमाज में प्रकाशित होनेवाली शताधिक नियमित पत्रिकाओं की अनेक वर्षों की फाईलें भी उपलब्ध हैं।

**शोध-सहयोग/मार्गदर्शन**

४. कार्यालय में पुस्तकों की उपलब्धि के आधार पर जैनधर्म एवं जैनविद्या पर अनुसन्धानकर्त्ताओं को



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक सहयोग एवं मार्गदर्शन की व्यवस्था भी उपलब्ध है। अभी तक यहाँ की सामग्री का उपयोग करनेवाले सात शोधार्थियों ने अपने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर विद्यावारिधि की उपाधि अर्जित की है। जिनकी तालिका उनके विषय के साथ निम्न है-

१. **श्रीमती अमिता जैन**- डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (आचार्य विद्यासागरकृत मूकमाटी और हिन्दी महाकाव्य)

२. **डॉ. सुनील जैन**- डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्व-विद्यालय, सागर (जैन साहित्य में ज्योतिष)

३. **डॉ. कु. चन्द्रकान्ता जैन**- डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (आचार्य जिनसेनकृत आदिपुराण में प्रतिपादित शिक्षाशास्त्रीय मान्यताओं का वर्तमान सन्दर्भ में परिशीलन)

४. **डॉ. वन्दना जैन**- डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्व-विद्यालय, सागर (विदिशा जिले का सांस्कृतिक अध्ययन : पुरातत्त्व एवं जैनधर्म के विशेष सन्दर्भ में)

५. **डॉ. कु. अनीता जैन**- रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (पाणिनि एवं जैनेन्द्र व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन)

६. **डॉ. ब्र. राजेन्द्र कुमार जैन**- रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (भारतीय योगपरम्परा और ज्ञानार्णव)

७. **डॉ. कु. शशि जैन**- डॉ. सर हरिसिंह गौर विश्व-विद्यालय, सागर (आचार्य कुन्दकुन्द और समन्तभद्र के श्रावकाचारों का विशेष अध्ययन)

इसके साथ ही तीन अन्य शोधार्थी इन ग्रन्थालय का उपयोग वर्तमान में कर रहे हैं, जिनके कार्य शीघ्र ही पूर्ण होने की सम्भावना है।

संग्रहीत इन पुस्तकों का सर्वाधिक उपयोग अनेक जैनसन्त व जैनधर्म के स्वाध्यायी जिज्ञासुओं द्वारा किया जाता है। विश्वविद्यालय में संचालित स्नातक एवं स्नातकोत्तर के जैनदर्शन के पाठ्यक्रम की उपलब्धता होने से अनेक छात्र-छात्राएँ भी इन पुस्तकों का उपयोग कर लाभान्वित होते हैं।

**सहायक गतिविधियाँ**

५. सर्वोदय जैनविद्यापीठ एवं स्व. पं. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य पुण्यस्मरण आयोजन समिति के संयुक्त तत्त्वावधान में राष्ट्रीय प्रतिभा प्रोत्साहन संगोष्ठी का आयोजन भी सफलता पूर्वक सन् २००२ में श्री सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर एवं २००३ में सागर में किया गया।

६. जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से एक पुस्तक विक्रय केन्द्र संचालित है, जिसमें निर्धारित छूट के साथ धार्मिक पुस्तकें उपलब्ध होती हैं।

**सर्वोदय जैनविद्यापीठ**
**सिद्धायतन, महावीरनगर, छोटा करीला,**
**सागर ४७० ००१**

संस्कृति और संस्कारों की ओर बढ़ते चले, आधुनिक शिक्षा के साथ

**श्री वर्णी दिगम्बरजैन गुरुकुल उच्चतर माध्यमिक विद्यालय एवं छात्रावास**

**प्रवेश प्रारंभ**

1. उच्चतम, स्वच्छंद आवासीय व्यवस्था
2. 6 एकड़ भूमि का विशाल प्राङ्गण
3. आधुनिक सुविधायुक्त अध्ययन कक्ष
4. प्रत्येक कक्षा में सीमित छात्र संख्या
5. प्रशिक्षित एवं अनुभवी शिक्षकों द्वारा अध्ययन
6. धार्मिक क्रियाओं का आगमानुसार प्रशिक्षण
7. सरस शुद्ध सात्विक भोजन व्यवस्था
8. कम्प्यूटर शिक्षण की व्यवस्था।
9. उच्च संगीतज्ञों द्वारा संगीत-शिक्षा
10. मासिक खेल प्रतियोगिताएँ
11. प्रातः कालीन योगाभ्यास क्रियाएँ
12. वार्षिक उच्च प्राप्ताङ्कों पर शासकीय उच्चाधिकारियों द्वारा सम्मान

**सम्पर्कसूत्रः अधिष्ठाता- ब्र. जिनेशजी**

मो. 9301338591, 9425984533, 9301338591, 2672991



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**प्रश्नकर्त्ता**- पं. विनीत शास्त्री बागीदौरा

**जिज्ञासा**- क्या उपपाद नाम का कोई आठवाँ समुद्घात भी होता है?

**समाधान**- उपपाद नामक कोई आठवाँ समुद्घात नहीं होता। समुद्घात तो सात ही होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र अध्याय २ सूत्र ८ की सर्वार्थसिद्धि टीका में यह शब्द बहुत प्रयोग हुआ है शायद आपने इनको ही देखकर प्रश्न लिखा है। जैसे-इस सूत्र की टीका में स्पर्शन प्ररूपणा में पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीवों का उपपाद की अपेक्षा सर्वलोक स्पर्श कहा है। यहाँ उपपाद शब्द का अर्थ इस प्रकार समझना है कि तीनों लोकों में स्थावर जीव भरे हुये हैं। यदि तीनों लोकों के किसी स्थान से कोई स्थावर जीव मरकर पंचेन्द्रिय में उत्पन्न होने वाला हो, तो वह मरण करने के तुरन्त बाद प्रथम समय से ही पंचेन्द्रिय जीव कहलाने लगता है। अभी वह पंचेन्द्रिय के शरीर को धारण नहीं कर पाया है, फिर भी पंचेन्द्रियजाति नामकर्म के उदय से पंचेन्द्रिय जीव कहलाता है। ऐसे पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि जीव पूरे लोक में पाये जाते हैं, यह यहाँ उपपाद शब्द का अर्थ लगाना चाहिये। प्रमाण इस प्रकार है-

तिलोयपण्णत्ति अधिकार २/८ की टीका के भावार्थ में इस प्रकार कहा है-

विवक्षित भव के प्रथम समय में होनेवाली पर्याय की प्राप्ति को उपपाद कहते हैं।

**जिज्ञासा**- रामचन्द्र जी का जन्म चैत्र शुक्ल नवमीं या फाल्गुन कृष्णा ११ को हुआ था?

**समाधान**- जैन प्रथमानुयोग के अनुसार रामचन्द्र जी का जन्म इन दोनों तिथियों को नहीं हुआ था। वैदिक या अन्य संस्कृति में हुआ हो, वह अन्य बात है। जैन प्रथमानुयोग के ग्रंथों के अनुसार रामचन्द्र जी का जन्म फाल्गुन कृष्णा १३ को हुआ था। प्रमाण इस प्रकार हैं-

(अ) उत्तरपुराण पर्व ६७ में इस प्रकार कहा है-

**कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां फाल्गुने मास्यजायत।**
**मद्यायां हल भृद्भावी चूलान्तकनकामरः॥ १४९॥**
**त्रयोदश सहस्राब्दो रामनामानताखिलः।**
**तत एव महीभर्तुः कैकेय्यामभवत्पुरः॥ १५०॥**

**अर्थ**- फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी के दिन मद्या नक्षत्र में सुवर्णचूल नामक देव जो कि मंत्री के पुत्र का जीव था, होनहार बलभद्र हुआ। उसकी तेरह हजार वर्ष की आयु थी, रामनाम था और उसने सब लोगों को नम्रीभूत कर रखा था---।

(आ) श्री महापुराण (रचयिता-कवि पुष्पदंत) की ६९ वीं संधि में इस प्रकार कहा है-

**मघरिक्खयदि णीरयदिसिहि, फग्गुणि तम कालिहि तेरसि हि।**
**देविइ णवमासहिं सुउजणिउ, तणु रामुरामु राएं भणिउ॥**

**अर्थ**- जब चन्द्रमा मघा नक्षत्र में स्थित था, दिशा निर्मल थी ऐसी फाल्गुन वदी तेरस को नौ माह पूरे होने पर देवी ने पुत्र को जन्म दिया। शरीर से सुन्दर होने के कारण राजा ने उसका नाम राम रखा।

**प्रश्नकर्त्ता**- सौ सरिता जैन नन्दुरवार (महा.)

**जिज्ञासा**- क्या जीव में ५३ भाव के अलावा अन्य भाव भी होते हैं?

समाधान- जीव के ५३ भावों को स्वतत्त्व कहा है, अर्थात् ये ५३ जीव के भाव चेतनात्मक हैं। इसकारण स्वतत्त्व कहे हैं। इनके अतिरिक्त अन्य भावों का भी उल्लेख टीकाओं से प्राप्त होता है, जो सामान्य से इन ५३ में ही गर्भित माने जा सकते हैं। वे इस प्रकार हैं-

(अ) ज्ञानार्णव सर्ग ६ में इस प्रकार कहा है-

**अन्योन्य संक्रमोत्पन्नो भावः स्यात्सान्निपातिकः।**
**षद्विंशद्भेदभिन्नात्मा स षष्ठो मुनिभिर्मतः॥ ४२॥**

**अर्थ**- जीव के इन पाँच भावों के परस्पर संयोग से उत्पन्न हुआ सान्निपातिक नाम का एक छठा भाव भी आचार्यों ने माना है। वह छब्बीस भेदों से भेदरूप है।

(आ) सान्निपातिक भावों के संबंध में राजवर्तिक अ. २/७ की टीका में इस प्रकार कहा है-

''सान्तिपातिक नाम का कोई छठवाँ भाव नहीं है। यदि है भी तो वह 'मिश्र' शब्द से गृहीत हो जाता है। 'मिश्र' शब्द केवल क्षयोपशम के लिये ही नहीं है किन्तु उसके पास ग्रहण किया गया 'च' शब्द सूचित करता है कि 'मिश्र' शब्द से क्षायोपशमिक और सान्निपातिक दोनों का ग्रहण करना चाहिये। संयोग भंग की अपेक्षा आगम में उसका निरुपण किया गया है। सान्निपातिक भाव २६, ३६ और ४१ आदि प्रकार के बताये हैं। जैसे २६ भाव का खुलाशा द्विसंयोगी-१०, त्रिसंयोगी-१०, चतुः संयोगी ५ और पंच संयोगी-१ =२६। उदाहरण-द्विसंयोगी जैसे मनुष्य और उपशांत क्रोध (औदयिक-औपशमिकभाव) आदि। इसी तरह अन्य भावों की तफसील राजवार्तिक से देख



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लीजियेगा।

(इ) तत्त्वार्थसूत्र अ.२/७ में जो 'च' शब्द दिया है, उसका अर्थ राजवार्तिक में इस प्रकार दिया है- अस्तित्व अन्यत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व पर्यायवत्व असर्वगत्व, प्रदेशवत्व अरूपत्व आदि के समुच्च के लिये सूत्र में 'च' शब्द दिया है। क्योंकि ये भाव अन्य द्रव्यों में भी पाये जाते हैं अतः असाधारण परिणामिक जीवभावों के निर्देशक इस सूत्र में इनका ग्रहण नहीं किया है। यद्यपि ये सभी भाव पारिणामिक हैं।

(ई) तत्त्वार्थसूत्र अ. २/५ में जो अंत में 'च' शब्द दिया है उसके संबंध में राजवार्तिक में कहा है- क्षायोपशमिक संज्ञित्वभाव, नोइंद्रियावरण के क्षयोपशम की अपेक्षा रखने के कारण मतिज्ञान में अंतर्भूत हो जाता है। सम्यक्-मिथ्यात्व, यद्यपि दूधपानी की तरह उभयात्मक है, फिर भी सम्यक्त्वपना उसमें विद्यमान होने से वह सम्यक्त्व में अंतर्भूत हो जाता है। योग भी क्षायोपशमिक भाव है, उसका वीर्यलब्धि में अंतर्भाव हो जाता है। अथवा 'च' शब्द से इन भावों का संग्रह हो जाता है।

उपरोक्त प्रकार से जीव के ५३ असाधारण भावों के अलावा, उपरोक्त सान्निपातिक या सम्यक्-मिथ्यात्व आदि भावों को समझ लेना चाहिए।

**जिज्ञासा**- आर्यिकाओं का गुणस्थान, पात्रपना, भक्तियाँ तथा चारित्र कौन सा होता है? स्पष्ट कीजिये?

**समाधान**- आपकी जिज्ञासा का उत्तर (आर्यिकाओं के संबंध में) इस प्रकार है-

(१) गुणस्थान- आर्यिकाओं का पाँचवा गुणस्थान होता है।

(२) पात्र- में मध्यम पात्र की कोटि में आती हैं।

(३) भक्तियाँ- आहार के समय इनके लिये नवधा भक्ति आवश्यक नहीं होती। पाद-प्रक्षालन तथा पूजन को छोड़कर शेष ७ भक्तियाँ होती हैं। यह भी ध्यान रखना चाहिये कि यदि आर्यिका माताजी का अपने शहर में प्रवेश हो रहा हो, विहार हो रहा हो तो उनका पाद-प्रक्षालन या उनकी आरती उतारना आगम सम्मत नहीं है। यदि आर्यिका माताजी तखत आदि पर विराजमान हैं तो उनके समक्ष अर्घ्य बोलना, सामग्री चढ़ाना, आरती करना भी उचित नहीं है। इन सब बातों को समझकर आगम की मर्यादा जानकर, विवेक से कार्य करना चाहिये यथायोग्य भक्तियों से अधिक भक्ति करके, आगम का अपलाप उचित नहीं है।

(४) चारित्र- आर्यिकाएँ संयमासंयम अर्थात् देश चारित्र की धारी होती हैं। सकलचारित्र धारी का गुणस्थान छठवाँ तथा सातवाँ होता है। इनका गुणस्थान पांचवाँ है, अतः ये देश चारित्र की धारी होती हैं।

**जिज्ञासा**- आजकल बहुत से साधर्मी भाई, मंदिर प्रवेश करते समय मंदिर की चौखट या देहली को छूकर मस्तक से स्पर्श करते है। क्या यह मूढ़ता नहीं है?

**समाधान**- नहीं, यह मूढ़ता नहीं है। हमारे पूज्य नवदेवता होते हैं- पांच परमेष्ठी, जिनधर्म, जिनवाणी, जिनालय एवं जिनविम्ब। ये जिनालय पूज्य होते है अतः मंदिर में प्रवेश करते समय निःसहि बोलते हुये मंदिर की चौखट या देहली का स्पर्श करके मस्तक से लगाते हुये ही प्रवेश करना चाहिये। यह मूढता नहीं, यह तो जिनालय की वंदना का तरीका है। सड़क से गुजरते हुये, यदि रास्ते में जिनालय आता हो तो तुरन्त हाथ जोड़कर तथा सिर झुकाकर वंदना करनी चाहिये। दिन में उस मार्ग से यदि २० बार आना-जाना पड़े तो हर बार ऐसा करना चाहिये। यदि जिनालय का शिखर दूर से दृष्टिगोचर हो जाये, तब भी तुरन्त वंदना करना चाहिये। यह जिनालय के प्रति बहुमान प्रदर्शित करने तथा वंदना के लिये है। आपको चाहिये कि आज से ही यह शुभकार्य करना प्रारंभ कर दें।

**जिज्ञासा**- पू. आचार्यश्री ने दूसरे अध्याय की वाचना में कहा था कि एक समय में एक इन्द्रिय संबंधी उपयोग ही होता है। परन्तु टी.वी. देखते समय हम देखते भी हैं और सुनते भी हैं ऐसा क्यों?

**समाधान**- आपके प्रश्न के समाधान में कार्तिके-यानुप्रेक्षा में अच्छी तरह समझाया है। जो इस प्रकार है-

**पंचिदिय णाणाणंमज्झे एगं च होदि उवजुत्तं।**
**मण-णाणे उव जुत्तो इंदियणाणं ण जोणेदि ॥२५९॥**

**अर्थ**- पाँचों इन्द्रिय में से एक समय में एक ही ज्ञान का उपयोग होता है तथा मनोज्ञान का उपयोग होने पर इन्द्रियज्ञान नहीं होता।

भावार्थ- सैनी पंचेन्द्रिय जीव को पाँच इन्द्रिय तथा मन, इन छह के निमित्त से मतिज्ञान होता है। परन्तु एक समय में इन छह में किसी एक के ही निमित्त से ज्ञान होता है, जब मन से आत्मा जान रहा होता है तब पांचों इन्द्रियों से नहीं जानता है।

यदि ऐसा है तो प्रश्न उठता है कि हाथ की कचौड़ी खाने पर घ्राण इन्द्रिय उसकी गंध को सूंघती है, श्रोत्रेन्द्रिय कचौड़ी के चवाने के शब्द को ग्रहण करती है, चक्षु कचौड़ी को देखती है, हाथ को उसके गर्म होने का ज्ञान रहता है और जिव्हा उसका स्वाद लेती है, इस तरह पांचों इन्द्रिय



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान एक साथ होते स्पष्ट क्यों दिखाई देते हैं? इसके समाधान में कार्तिकेय स्वामी कहते हैं-

**एक्केकाले एक्कं णाणं जीवस्स होदि उवजुत्तं।**
**णाणा णाणाणि पुणो, लद्धि सहावेण वुच्चंति॥ २६०॥**

**अर्थ**- जीव के एक समय में एक ही ज्ञान का उपयोग होता है। किन्तु लब्धिरूप से एक समय में अनेक ज्ञान कहे हैं।

**भावार्थ**- प्रत्येक क्षायोपशमिक ज्ञान की दो अवस्थायें होती हैं- एक लब्धिरूप और एक उपयोगरूप। अर्थ को ग्रहण करने की शक्ति का नाम लब्धि है और अर्थ को ग्रहण करने का नाम उपयोग है। लब्धिरूप में एक साथ अनेक ज्ञान रह सकते हैं किन्तु उपयोगरूप में एक समय में एक ही ज्ञान होता है। जैसे- पांचों इन्द्रियजन्य ज्ञान तथा मनोजन्य ज्ञान, लब्धिरूप में हमारे में सदा रहते हैं, किन्तु हमारा उपयोग जिस समय जिस वस्तु की ओर होता है, उस समय केवल उसी का ज्ञान हमें होता है। कचौरी खाते समय भी जिस समय हमें उसकी गंध का ज्ञान हो रहा होता है, उस समय इसका ज्ञान नहीं होता। जिस समय रस का ज्ञान हो रहा होता है उस समय स्पर्श का ज्ञान नहीं होता। किन्तु उपयोग की चंचलता के कारण कचौड़ी के बंध, रस, स्पर्श वगैरह का ज्ञान इतनी शीघ्रता से होता है कि हमें समय भेद का ज्ञान नहीं होता। तब ही हम यह समझ लेते हैं कि पाँचों ज्ञान एक साथ हो रहे हैं। किन्तु यथार्थ में पाँचों ज्ञान क्रम से ही होते हैं अतः उपयोगरूप ज्ञान एक समय में एक ही होता है।

टी.वी. देखते समय भी ऐसा ही समझना चाहिये। हम को ऐसा लगता है कि हम देख भी रहे हैं और सुन भी रहे हैं। वास्तव में ऐसा उपयोग की चंचलता से प्रतीत होता हैं। सच तो यह ही है कि छहों में से एक ज्ञान उपयोग में रहता है, शेष पांच लब्धि में रहते हैं। जैसे- कौएँ के आँख की दो गोल होती हैं परन्तु उनमें पुतली एक ही होती है। हम कौएँ को बडी गौर से देखें, तो भी लगेगा कि दोनों गोलकों में पुतली है। जबकि वास्तविकता यह है कि उसके पुतली एक ही होती है। वह उसे इतनी तेजी से घुमाता है कि ऐसा लगता है कि दोनों गोलकों में पुतली हैं। एक पुतली होने से ही कौआ-काना कहा जाता है।

यह भी समझना चाहिये कि जब आत्मा को दर्शन हो रहा होता है तब ज्ञान नहीं होता, जब मतिज्ञान हो रहा है तब श्रुत ज्ञान नहीं होता, जब अवग्रह हो रहा होता है तब ईहा नहीं होता, जब व्यजनावग्रह हो रहा होता है तब अर्थावग्रह नहीं होता आदि।

**1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी**
**आगरा- 282002 (उ.प्र.)**

## भजन

**विनोद कुमार 'नयन'**

निशदिन करियो पुण्य कमाई।
जहाँ पे होये पाप कमाई, भीर परै दुखदाई॥ निशदिन --
पुण्य कमाई सुख खों लावे, रिद्धि-सिद्धि सबहिं दिखावे।
घर में भी सुख-शाँति होवे, रार मचै नें भाई॥ निशदिन--
जैसो पैसा घर में आवे, वैसो अपनो असर दिखावे।
आवे घर में खोटो पैसा, उड़ है खाई उड़ाई॥ निशदिन--
मेहनत को गर पैसा होवे, घर में आदमी चैन सें सोवे।
खर्च करें सब सम्हल-सम्हल कें, संतान नें बिगड़े भाई॥
पईसा हाथ को मैल कहावे, ज्यादा जो कोऊ गरे लगावे
गलत राह खों वो अपनावे, कष्ट उठावे भाई॥
निशदिन---
'नयन' रखो संतोष सदा मन, सबसें बड़ो जगत में जो धन।
ऐके आगे सबई हैं फीके, क्यों चित्त बात भुलाई॥
निशदिन ---

धर्म की जड़ तो है पाताल।
जो भी धरम की शरण में आया, हुआ वो मालामाल॥
धर्म है सच्चा मीत तुम्हारा, करता सदा सम्हाल।
आने वाला अगर हो संकट, उसको देता टाल॥
धर्म की---
जीवन में सुख-शाँति लाता, हटाता मायाजाल।
जिसने सच्चा धरम है जाना, डरता उससे काल॥
धर्म की---
सीधा सरल स्वभावी होता, नहीं होता विकराल।
लाखों में वो अगल दिखाता, चमकता उसका भाल॥
धर्म की---
'नयन' धरम धारण तू कर ले, क्यों बनता कँगाल।
ये अमूल्य धन है जगमाँहि, सुखी करे त्रिकाल॥
धर्म की---

**एल.आई.जी.-24, ऐशबाग स्टेडियम के पास, भोपाल**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# जैन त्योहारों के दौरान पशुवध एवं माँस विक्रय पर रोक जायज : सुप्रीम कोर्ट

नई-दिल्ली। सुप्रीम कोर्ट ने १४ मार्च, २००८, शुक्रवार को एक ऐतिहासिक फैसले में गुजरात हाई-कोर्ट का वह फैसला पलट दिया, जिसमें जैन-पर्व 'पर्युषण' के दौरान नौ दिन तक किसी भी तरह के पशुधन के वध एवं माँस विक्री पर लगाई गई रोक को खारिज कर दिया था। जैन-पर्व पर गुजरात सरकार द्वारा पशुवध एवं माँस विक्री पर लगाए गए प्रतिबंध को सुप्रीम कोर्ट ने सही ठहराया है।

सुप्रीम कोर्ट ने गुजरात सरकार के द्वारा लगाई गयी उक्त रोक को सही ठहराते हुए कहा कि आधुनिक भारत के वास्तुकार बादशाह अकबर ने भी सुलह-ए-कुल की रीति अपनाई थी, जिसका मतलब सभी धर्मों व समुदायों के प्रति सहनशील होना था। सुप्रीम कोर्ट ने टिप्पणी की कि महान् शासक अकबर ने सभी समुदाय के लोगों को समान अवसर व सम्मान दिया था। अतः लोगों को भी अकबर से सीख लेनी चाहिए, जो मुस्लिम होते हुए भी अपनी पत्नी जोधा के सम्मान में एक दिन के लिए शाकाहारी भोजन करता था।

न्यायमूर्ति श्री एच. के सेमा और श्री मार्कण्डेय काटजू की पीठ ने अपने पृष्ठीय फैसले में गुजरात के अहमदाबाद नगर-निगम द्वारा 'पर्युषण' पर्व के दौरान पशुवध एवं माँस की विक्री पर बंदिश लगाने के खिलाफ दायर की गई एक याचिका की सुनवाई के दौरान यह फैसला प्रदान किया।

पीठ ने हिंसाविरोधक संघ की याचिकाओं को स्वीकार करते हुए यह भी कहा है जैनसमुदाय की भावनाओं का आदर करते हुए पशुवध एवं माँस की दुकानें एक वर्ष में नौ दिन तक बंद करने के फैसलों को अतार्किक प्रतिबंध नहीं कहा जा सकता।

विभिन्न समाचार एजेंसियों के द्वारा प्रेषित एवं समाचार-पत्रों में प्रकाशित उक्त संक्षिप्त समाचार ही अहिंसा, जीव-दया, प्राणि-मैत्री, पशु-कल्याण, पर्यावरण संरक्षण के साथ शाकाहार के क्षेत्र में भी मील के पत्थर की भाँति एक आधार स्तंभ बन गया है। गुजरात सरकार द्वारा जैन-समुदाय के पवित्र पर्व पर्युषण के दौरान लगाई गई पशुवध एवं माँस विक्रय प्रतिबंध एक सामयिक, ऐतिहासिक एवं सर्वधर्म समभाव की जीवन्त मिशाल है।

प्रबुद्ध व विचारशील व्यक्तियों, कर्मठ कार्यकर्त्ताओं, सक्रिय सामाजिक व धार्मिक संगठनों/संस्थाओं का यह नैतिक दायित्त्व है कि वे अब अपनी-अपनी कमर कसें। और गुजरात सरकार के उक्त आदेश की तरह देश भर में अपने एवं अन्य प्रदेशों में भी पर्युषण पर्व के दौरान पशुवध और माँस विक्रय को पूर्ण प्रतिबन्धित करवाने हेतु जन-जागरण करें। साथ ही स्थानीय प्रशासन एवं राज्य सरकार से अविलम्ब संपर्क स्थापित करके शासनादेश निर्गमित करने/करवाने हेतु सार्थक प्रयास करें। विभिन्न सांसद, विधायक अन्य जन-प्रतिनिधियों, राजनेताओं, राजनैतिक संगठनों, समाचार-पत्र एवं पत्रिकाओं, इलेक्ट्रॉनिक एवं प्रिंट मीडिया आदि के माध्यम से इस मुहिम को गति प्रदान की/ कराई जा सकती है।

कदाचित् राज्य सरकार के द्वारा ध्यान आकृष्ट कराये जाने के उपरान्त भी इस गंभीर मुद्दे पर ध्यान नहीं दिये जाने पर, योग्य कानूनविदों से सत्परामर्श लेकर अपने राज्य के उच्च-न्यायालय में सुप्रीम कोर्ट के इस फैसले के परिप्रेक्ष्य में निज प्रदेश में पशुवध एवं माँस विक्रय को पर्युषण-पर्व के दौरान पूर्णतः बंद किये जाने हेतु जनहित याचिका दाखिल की/कराई जा सकती है।

पूज्य आचार्य भगवन्तों, साधु-सन्तों, साध्वीगण, विद्वज्जगत्, धर्मोपदेशक भी यदि अपने धर्मोपदेशों के प्रसङ्ग आदि पर इस महान्, अद्वितीय कार्य को अमलीजामा (पहनाएँ जाने हेतु सामाजिक कर्णधारी / जनसामान्य को प्रोत्साहित) करें तो यह मुहिम अतिशीघ्र ही अपने लक्ष्य को पा लेगी, ऐसा विश्वास है। गुजरात के समान आपके प्रयासों से यदि नौ दिन तक पशुवध व माँस विक्रय कार्य प्रतिबंधित होता है, तो अकेले आपके राज्य में ही उतने दिनों में लाखों जीवों को जीवनदान मिल सकेगा। अतएव ऐसे श्रेष्ठ, अहिंसक पुण्यवर्धक कार्य को प्रोत्साहित करने हेतु यथासंभव तन-मन-धन एवं योग्य समय देकर समुचित प्रयास करना सामयिक रचनात्मक पहल होगी।



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

# अखिल भारतीय जैनविद्वत्सम्मेलन : एक सुखद समागम

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

श्री १००८ श्री मज्जिनेन्द्र जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा, पंच गजरथ महोत्सव एवं विश्वशांति महायज्ञ के शुभावसर पर दिनाङ्क १७ फरवरी, २००८ को ज्ञान कल्याणक दिवस के शुभावसर पर संतशिरोमणि आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज (ससंघ) के शुभाशीर्वाद एवं सान्निध्य में मुनिश्री अजितसागरजी महाराज एवं क्षुल्लक श्री विवेकानन्दसागरजी महाराज की मंगल प्रेरणा से पंच-कल्याणक महोत्सव स्थल श्री राधाकृष्णरम्, कालाबाग, गंजबासौदा (विदिशा) म.प्र. में, धर्म दिवाकर, काव्य मर्मज्ञ पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश' के संयोजकत्व तथा डॉ. पी.सी. जैन एवं डॉ. आराधना जैन, गंजबासौदा (म.प्र.) के सहसंयोजकत्व तथा मेरे (डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती') के निर्देशन एवं संचालकत्व में अखिल भारतीय जैन विद्वत्सम्मेलन प्रासंगिक विचारों से ओतप्रोत तीर्थसंरक्षण एवं पंचकल्याणक प्रतिष्ठा जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर अतिशय प्रभावनापूर्वक संपन्न हुआ। इस विद्वत्सम्मेलन में आचार्यश्री के ससंघ सान्निध्य में दो सत्र सम्पन्न हुए। जिनकी अध्यक्षता क्रमशः भाषाविद् डॉ. वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ एवं डॉ. शीतलचन्द्र जैन (अध्यक्ष-अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद्) जयपुर ने की।

**ग्रंथ विमोचन**

अखिल भारतीय जैनविद्वत्सम्मेलन के मध्य अ. भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् के द्वारा प्रकाशित आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा संस्कृत भाषा में रचित एवं हिन्दी पद्यानुवाद युक्त काव्य 'चैतन्य चन्द्रोदय' के द्वितीय संस्करण का विमोचन मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराज सिंह चौहान ने किया तथा कृति का परिचय डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' ने दिया। इसी श्रृंखला में 'आचार्य गुणभद्र कृत आत्मानुशासन' ग्रंथ पर आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा रचित 'गुणोदय' (पद्यानुवाद) पर आर्यिका श्री मृदुमति माता जी द्वारा लिखित 'अन्वयार्थ व भद्रार्थ', बालब्रह्मचारिणी पुष्पा दीदी द्वारा संयोजित ग्रंथ 'आत्मानुशासन' का विमोचन रहली समाज द्वारा किया गया। ग्रंथ का परिचय पं. शिवचरणलाल जैन मैनपुरी ने दिया। तृतीय कृति मुनि श्री अजितसागरजी महाराज द्वारा आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के सुभाषितों के संग्रहग्रंथ 'विद्या-वाणी' का विमोचन किया गया। कृति का परिचय डॉ. कपूरचन्द्र जैन, खतौली ने दिया। संस्कार सागर एवं पार्श्व-ज्योति (मासिक) के नवीन अङ्को का विमोचन किया गया। इनका परिचय पं. विनोद जैन, रजवांस ने दिया।

**बैलगाड़ी उपहार योजना की घोषणा**

अ.भा.जैन विद्वत्सम्मेलन में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान ने आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज द्वारा अपने प्रवचन में यह कहे जाने पर कि आपकी सरकार ने गौवंश की हत्या पर प्रतिबंध लगाया है जो सराहनीय है लेकिन गाय तो दूध देने के कारण लोग पाल रहे हैं किन्तु खेती के कार्य में ट्रेक्टर आदि के आ जाने के कारण बैलों की उपेक्षा हो रही है अतः उन्हें बूचड़खाने भेजा जा रहा है। ऐसे समय में जरूरी है कि बैलों के संरक्षण पर ध्यान दिया जाए और कृषि उपज मंडियों में बैलगाड़ियों को चलवाने की व्यवस्था की जाए तथा सामाजिक संगठन एवं सरकार इसमें सहयोग करें। इस विचार को सुनते ही मुख्यमंत्री ने अपनी संवेदनशीलता का परिचय देते हुए कहा कि मैं आचार्यश्री के विचारों से प्रेरित होकर यह घोषणा करता हूँ कि जो भी किसान या हम्माल मंडी में बैलगाड़ी चलायेगा, उसके लिए म.प्र. शासन की ओर से बैलगाड़ी का आधा लागत व्यय दिया जायेगा। अपार जनसमूह ने करतलध्वनि से इसका समर्थन किया।

**मुख्यमंत्री की मांग**

अ.भा.जैन विद्वत्सम्मेलन में मध्यप्रदेश के मुख्यमंत्री श्री शिवराजसिंह चौहान ने आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज के चरणों में सपत्नीक श्रीफल अर्पित कर चरण वंदना की और आचार्यश्री से मुखातिब होकर जनसमूह के मध्य कहा कि- आचार्यश्री जब मैंने सर्वप्रथम आपके नेमावर में दर्शन किये थे तो आपसे आशीर्वाद मांगा था कि मुझे १. सद्बुद्धि देना क्योंकि राजनीति की रपटीली राह में कोई भी भटक सकता है। २. सन्मार्ग देना क्योंकि जिसे उचित रास्ते का ज्ञान नहीं वह आगे कैसे बढ़ेगा और आज मैं इस विद्वत्सम्मेलन के मध्य आपसे विनम्र प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझे। ३. सामर्थ्य देना क्योंकि यदि सामर्थ्य नहीं रही तो मैं और मेरी सरकार हिंसा एवं अन्याय का मुकाबला और अहिंसा और न्याय की प्रतिष्ठा कैसे कर सकेगी?



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह सुनकर आचार्यश्री मंदमंद मुस्कुराते रहे और जनता में तुरंत प्रतिक्रिया हुई कि आगामी विधानसभा चुनाव में जीतने के लिए आशीर्वाद मांग रहे हैं। इस अवसर पर मुख्यमंत्री ने अपनी सरकार द्वारा कन्या-शिक्षा, जननी-सुरक्षा और कन्याओं के संरक्षण हेतु प्रारंभ की गई योजनाओं की बड़े ही काव्यात्मक ढंग से जानकारी दी जिसका जनसमूह ने खुले दिल से करतलध्वनि कर समर्थन दिया। उन्होंने आचार्यश्री को विदिशा में ग्रीष्मकालीन वाचना करने तथा उसके बाद भोपाल पधारने हेतु विनती की और श्रीफल अर्पित किया।

**आचार्यश्री नारेली जायें**

अ.भा.जैनविद्वत्सम्मेलन के मध्य अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् के अध्यक्ष डॉ. शीतलचन्द्र जैन ने राजस्थान के जैनतीर्थों के परिचय के मध्य कहा कि- नारेली राजस्थान का नवोदित तीर्थ है जहाँ आचार्यश्री के सान्निध्य में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का आयोजन होना शेष है। हम सब राजस्थानवासी आपके शुभाशीर्वाद की प्रतीक्षा में हैं। डॉ. साहब के वक्तव्य पर टिप्पणी करते हुए सम्मेलन के संचालक डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' ने कहा कि यद्यपि आचार्यश्री के चरण बुन्देलखण्डवासियों ने पूरे समर्पण-भाव के साथ पकड़ रखे हैं अत: मैं यह तो नहीं कह सकता कि आचार्यश्री बुन्देलखण्ड छोड़कर अन्यत्र विहार करें किन्तु मैं श्री दिगम्बरजैन ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र नारेली-अजमेर (राजस्थान) कमेटी की ओर से पूज्य आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज से यह निवेदन अवश्य करना चाहूँगा कि वह वहाँ आयोजित होनेवाले पंचकल्याणक प्रतिष्ठा समारोह हेतु अपनी स्वीकृति प्रदान करें और वहाँ अपना ससंघ सान्निध्य एवं शुभाशीर्वाद प्रदान करें क्योंकि आपके ही प्रमुख शिष्य मुनिपुङ्गव श्री सुधासागरजी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं मंगल प्रेरणा से यह अभिनव तीर्थ साकार हो रहा है जो आध्यात्मिक पर्यटन स्थल के रूप में विश्व के पर्यटन मानचित्र पर अपनी दस्तक देने जा रहा है। अत: यदि आचार्यश्री के चरण वहाँ पड़ते हैं तो उस तीर्थ के उत्तरोत्तर विकास को गति मिलेगी। वहाँ आर.के. मार्बल्स परिवार की ओर से विशाल एवं भव्य आदिनाथ जिनालय का निर्माण हुआ है वह पर्यटकों को सहज ही आकर्षित करता है और जो भी वहाँ जाता है वह एक अध्यात्म के रंग से रंगकर निकलता है। उपस्थित जनसमूह ने भी करतल ध्वनि से इसका समर्थन किया। राजस्थानवासियों को आशा है कि आचार्यश्री अवश्य वहाँ पधारेंगे और उनकी मनोकामनापूर्ण करेंगे।

**आचार्यश्री की भावना**

अ.भा. जैनविद्वत्सम्मेलन के मध्य परमपूज्य आचार्यश्री ने ज्ञान कल्याणक के महत्त्व को रेखाङ्कित करते हुए जहाँ जिनवाणी के महत्त्व एवं षट्द्रव्य व्यवस्था पर प्रेरक प्रवचन दिया वहीं सम्मेलन के निदेशक डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती' एवं संयोजक धर्मदिवाकर पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश' आदि विद्वानों से परस्पर संवाद में भावना व्यक्त की कि जैनसमाज में जो संस्थाएँ पहले से कार्य कर रही हैं उन्हें और अधिक सक्रिय करने की आवश्यकता है इसके लिए समाज को तन-मन-धन से सहयोग करना चाहिए।

**एल-६५, न्यू इंदिरानगर, बुरहानपुर (म.प्र.)**

## राणा प्रताप का भाट

जब वीर-केसरी राणा प्रताप जंगलों और पर्वत-कन्दराओं में भटकते फिरते थे, तब उनका एक भाट पेट की ज्वाला से तंग आकार शहंशाह अकबर के दरबार में पहुँचा और सिरकी पगड़ी बगल में छिपाकर फर्शी सलाम झुका लाया। अकबर ने भाट की यह उद्दण्डता देखी तो तमतमा उठा और रोष-भरे स्वर में बोला-

'पगड़ी उतारकर मुजरा देना, जानता है कितना बड़ा अपराध है?'

भाट अत्यन्त दीनता-पूर्वक बोला- 'अन्नदाता! जानता तो सब कुछ हूँ, मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ। यह पगड़ी हिन्दूकुल-भूषण राणा प्रतापकी दी हुई है। जब वे आपके सामने न झुके, तब उनकी दी हुई यह पगड़ी कैसे झुका सकता था? मेरा क्या है, मैं ठहरा पेट का कुत्ता, जहाँ भी पेट भरन की आशा देखी, वहीं मान अपमान की चिन्ता न करके पहुँच गया। मगर जहाँ-पनाह...'

अकबर ने सोचा- 'वह प्रताप कितना महान् है, जिसके भाट तक शत्रु के शरणगत होने पर भी उसके स्वाभिमान और मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हैं।' (अनेकान्त, मार्च १९३९ ई.)

**श्री अयोध्या प्रसाद गोपलाय : 'गहने पानी पैठ' से साभार**



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावसहित बंदे जो कोई, ताहि नरक पशु गति नहिं होई।

## वंदना से पूर्व तीर्थ सुरक्षा का एक संकल्प

पर्वतराज श्री सम्मेद शिखर एवं अन्य तीर्थ पर्वतों पर मैं किसी भी प्रकार की खाद्य व पेय सामग्री नहीं खरीदूँगा।

क्योंकि, सामग्रियाँ बेचनेवाले पर्वतों पर अपने स्थायी निवास बनाने लगे हैं, जिससे सभी तीर्थक्षेत्र गिरनार जी की तरह असुरक्षित हो जायेंगे।

*तीर्थ हमारे प्राण हैं इनकी सुरक्षा हमारा कर्त्तव्य व धर्म है*

निवेदक :

**श्री शान्तिनाथ प्रकाशन समिति, 18, खरीफाटक विदिशा**

सौजन्य :

**श्रीमती स्नेहलता जैन, धर्मपत्नि-स्व. गुलाबचन्द्र जैन**

**( उत्सव टेंट हाउस ) विदिशा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

# मुनि श्री क्षमासागर जी की कविताएँ

## बसन्त

मुझसे सुनकर
बात मरण की
मेरे भीतर–
तुम्हें निराशा
छाई लगती होगी
पर जीवन में
स्वीकार मरण का
हँसी–खुशी कर लेना
जीवन का
इनकार नहीं है
वह तो क्रम है
संसृति का
जैसे वृक्षों से
पतझर आने पर
सूखे पत्तों का गिरना
पतझर से
इनकार नहीं
स्वागत है
आते बसन्त का।

## रेत पर पैरों की छाप

नदी के किनारे
रेत पर पड़ी
अपने पैरों की छाप,
सोचा
लौटकर उठा लाऊँ।
मुड़कर देखा, पाया
उठा ले गयीं हवाएँ
मेरी छाप अपने आप।
अब मन को
समझाता हूँ
कि हवाएँ सब
दुश्मनों की नहीं होतीं
जो मिटाने आती हों
हमारी छाप।
असल में,
अहं की रेत पर
बनी हमारी छाप
मिट जाती है
अपने–आप

'अपना घर' से साभार

**स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक :** रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन–1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा–282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। **संपादक :** रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org